शील-कलश

[उपन्यास]

आशीर्वाद

परमपूज्य ज्ञान दिवाकर आचार्य श्री भरत सागरजी

लेखिका

परमपूज्य १०५ आर्यिका श्री स्याद्वादमती माताजी

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् पुष्प संख्या—१३१

प्रेरणा स्रोत : **आचार्यश्री भरतसागरजी महाराज**

संयोजन : **ब्र० प्रभा पाटनी B.Sc.LLB.**

ग्रन्थ : **शील-कलश [उपन्यास]**

लेखिका : **परम पू० १०५ आर्यिका स्याद्वादमती माता जी**

संस्करण : प्रथम ३००० प्रतियाँ
वीर निर्वाण सं० २५२९ सन् २००२

सर्वाधिकार सुरक्षित :

प्रकाशक : **भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्**

पुस्तक प्राप्ति स्थान : **आचार्य श्री भरतसागर जी महाराज संघ**

मूल्य : **१०) रुपये**

मुद्रक : बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी-१०
फोन नं० २७६२१४

समर्पण

परम पूज्य सन्मार्ग दिवाकर आचार्य श्री

१०८ विमलसागर जी महाराज के

पट्ट शिष्य

मर्यादा-शिष्योत्तम

ज्ञान-दिवाकर

प्रशान्तमूर्ति

वाणीभूषण

भुवनभास्कर

समतामूर्ति

गुरुदेव परम पूज्य

आचार्यश्री १०८ भरतसागर जी महाराज के

कर-कमलों में

सादर-समर्पित

आमुख

विश्व में भारतीय संस्कृति की अपनी अनोखी अमिट छाप रही है । जिस प्रकार मन्दिर की शोभा उसके शिखर से सरोवर की शोभा कमल से, फूल की शोभा उसकी महक से है, उसी प्रकार नारी की शोभा उसके शील से अर्थात् लज्जा गुण से है ।

नारी के ६७ संकल्प, उसके धैर्य व साहस से भारतीय संस्कृति विश्व में प्रसिद्ध है । शील की रक्षार्थ अपने सतीत्व की जिन्होंने परीक्षा दी अपने प्राणों को भी न्यौछावर करने से चुकी नहीं है । ऐसी नारियों में सीता, अंजना, चन्दनबाला ने शील धर्म को जीवन्त रखा और अपने सतीत्व को अमरत्व देकर नारी समाज का स्थान ऊँचा किया ।

इसी प्रकार से मनोरमा व सुखानन्द के जीवन में हुआ । मनोरमा देवी के सतीत्व/शील की परीक्षा हुई । पंच परमेष्ठी णमोकार मंत्र का ध्यान करके उनके चरणों में नमस्कार करके अपने शील धर्म को प्रकट कर सच्चे जिन धर्म की प्रभावना की ।

प्रस्तुत कथानक शीलकलश (उपन्यास) में पात्र मनोरमा की प्रमुख अद्भुत भूमिका रही है । उसके शील धर्म का पालन करने से भारतीय नारियों को सम्बल मिलता है अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न कर धर्म मार्ग में प्रवृत्त होती है । परम पूज्या विदूषी रत्न आर्यिका १०५ स्याद्वादमती ने इस प्रकार की शिक्षाप्रद व नैतिक शिक्षाप्रद मानव जीवन को सुदृढ़ बनाते हेतु जैन धर्म से सम्बन्धित कई नाटक लिखे व उन्हें मंच पर खेला भी गया जो काफी हद तक सफलता को प्राप्त हुए व जैन अजैन सभी लाभान्वित हुए । उनमें हैं- वैराग्य की ओर, सत् पथ की ओर (अंजना सती) जैन रामायण, धूप दशमी आदि । इसी शृंखला में माताजी ने शील कलश उपन्यास लिखकर हम सभी को समर्पित किया है इसे पढ़कर

सभी पाठकगण लाभान्वित होकर मोक्ष मार्ग में लगे यही आशय पूज्या माताजी का है ।

पू० माताजी ने कई ग्रन्थों की टीका व सम्पादन किया है हम सभी को सरल व सुबोध भाषा में समझ आ जावे ऐसी प्रश्नोत्तरी स्याद्वाद बाल शिक्षा एक से चार भाग छहढाला धार्मिक कोर्स की पुस्तकें प्रश्नोत्तर रूप में लिखकर हमारे लिए बहुत बड़ा उपकार किया । इसके अलावा विधान जिन सहस्त्रनाम पूजा अन्य अनेक पूजा भी आपके द्वारा रचित हैं पू० माताजी ने हम भटके प्राणियों को सरल भाषात्मक साहित्य प्रदान कर धर्म में स्थिर करने का मार्ग बताकर मानव जीवन को सतपथ दिया । उनके इस कार्य के लिए हम कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए वीर प्रभु प्रार्थना करते हैं कि माताजी के ज्ञान का प्रचार जन-जन तक हो व जिन धर्म की प्रभावना हेतु दि० जैन साहित्य का उनके निर्देशन में होता रहे व लेखन कार्य भी करती रहें । अन्त में माताजी चरण सरोज त्रिकाल त्रिबार शत् शत् वन्दामि ।

शरद पूर्णिमा — **प्रभा पाटनी**

२१-१०-२००२

बाराबंकी

श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय नमः

शील-कलश

अरहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधुगण को नित नमो ।
जिनमार्ग जिनवाणी जिनेश्वर, चैत्य आलय को भजो ।।
नवदेवता ये पूज्य जग में, नित्य आराधन करूँ ।
''शील-कलश'' ये पूज्य सबसे, नमन उसको नित करूँ ।।

पुण्यात्मा पुरुषों का पुण्य स्वर्गिम सुखों से तृप्त कराता हुआ उर्ध्वलोक में विचरण कराता है, पापी जीवों का पाप नरक की यात्रा कराता है, पुण्य-पाप के समतौल पर चलने वाला जीव मध्यलोक में गमनागमन कराता है । पुण्य-पाप से रहित महान् आत्माएँ सिद्धालय में अनन्त सुखामृत का पान कर अनन्त आनन्द में हिलोरें लेते हैं । अनन्त आकाश के ठीक मध्य लोक है । लोक के ठीक मध्य जम्बू फलों के गुच्छों से लहलहाता विशाल एक लाख योजन का जम्बूद्वीप है । यह द्वीप सर्व द्वीपों के मध्य प्रसिद्ध, अपनी अनुपम छटा एवं सौन्दर्य से पृथ्वीतल को जीतने वाला है । बड़े-बड़े कुलाचल, कुलाचलों पर अकृत्रिम जिनालय, जिनालयों में वीतराग जिनबिम्ब भव्य-जीवों को शान्ति का अमर संदेश देते हुए सनातन जिनधर्म की महिमा को दर्शा रहे हैं । यह द्वीप भरत-विदेह व ऐरावत जैसी कर्मभूमियों से शोभायमान है जहाँ मानव असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प व कला जैसे षट्कर्म व देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप व दान षट् आवश्यक कर्मों को नित्य करता हुआ भुक्ति व मुक्ति दोनों कलाओं में पारंगत हो शाश्वत सुख को प्राप्त करने की दक्षता प्राप्त करता है । इसी द्वीप में दान के फल को प्रदर्शित करने वाले हेमवत, हरि, देव कुरु, उत्तर कुरु, रम्यक, हैरण्यवत नामक छः भोगभूमियाँ हैं । जहाँ जीव मात्र भोगों में लीन हो पूर्व पुण्य का फल भोगता है । इस द्वीप के अनुपम सौन्दर्य को

दर्शाने वाली गंगा-सिन्धु आदि चौदह नदियाँ यहाँ सदा लहरों से लहराती, बहती मनमुग्ध करती रहती हैं। जम्बूद्वीप में ३४ अयोध्या नगरियाँ हैं जहाँ "शील कलश" के स्वामी तीर्थंकरों का जन्म सदा होता है। तथा तीर्थंकर भगवन्तों का जहाँ जन्माभिषेक इन्द्रों द्वारा होता है ऐसा सुमेरु पर्वत इस द्वीप की रीढ़ है। एक लाख योजन उत्तुंग सुमेरु पर्वत स्वर्णमयी है, चार वन व सोलह अकृत्रिम चैत्यालय तथा सत्रह सौ अट्ठाईस वीतराग जिनप्रतिमाओं से 'शोभायमान है। जम्बूद्वीप में उत्पन्न होने वाले सभी तीर्थंकरों का जन्माभिषेक पाण्डुक वन में होता है, इसी वजह से सुमेरु पर्वत तीर्थ की अनुपम उपमा से अलंकृत हुआ है।

जम्बूद्वीप के ठीक मध्य मेरु की दक्षिण दिशा में "भरत क्षेत्र" है। इस भरतक्षेत्र में असंख्यात कल्पकाल बीतने के पश्चात् एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है। इस हुण्डावसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में आदि तीर्थंकर वृषभदेव हुए। वृषभदेव के पुत्र "भरत चक्रवर्ती" के नाम से यह भरत "भारत" देश के नाम से जाना जाता है। भरत देश अध्यात्मपरायण महान् देश है। इस देश की संस्कृति धर्मपरायण ऋषि-मुनियों की संस्कृति है। भारत देश का अशोक चक्र चौबीस आरों से बना हुआ है जो इस देश की सनातन जैन संस्कृति शीलधुरन्धर चौबीस तीर्थंकरों के पंचशील–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह का प्रतीक है। चौबीस तीर्थंकरों की इस पावन धरा पर वीतरागी सन्तों व शीलधुरन्धर पुरुषों व नारियों ने अपने शीलव्रत की रक्षा में प्राणों की बलि देने में भी तनिक परवाह नहीं की। आज भी यह देश अपने शील-सौन्दर्य की अमर निर्झरणी से मानों अमृत की अजस्र धारा बहाता हुआ विश्व के सर्वोच्च शिखर पर अपनी छाप जमाये हुए है।

भारत देश की पश्चिम दिशा में मालव प्रान्त में उज्जयिनी नामक एक सुन्दर नगरी है। इस नगरी का इतिहास अपनी अनेकों गौरवपूर्ण गाथाओं से भरा पड़ा है। धार्मिक और ऐतिहासिक तथ्यों से अपना स्वाभिमान रखने वाली उज्जैन नगरी सौन्दर्य, कला, दान

व शीलादि गुणों से लोकप्रसिद्ध है । यह अपनी सुन्दरता में कुबेर की अलकापुरी और इन्द्र की अमरावती को भी मानों पराजित करती नजर आती है । सत्यता यह है कि धर्मप्राण नगरी सुखकारक, दुःखहारक प्राणप्रिय भव्यजनों की जन्मदात्री है । जिस समय की हमें चर्चा करनी है उस काल में इस नगरी का विस्तार द्वादश कोट प्रमाण था । आइये, सर्वप्रथम धर्मपरायण नगरी की चर्चा कर उसकी वन्दना कर, आगे का कथन जो जीवन में मोह, पट का खोलने वाला है, चर्चा करें–

उज्जैन नगरी में महीदत्त नामक एक धर्मप्रिय सेठ रहते थे । धर्मात्मा, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा में परायण, सम्यक्त्व गुण मंडित, शीलव्रतधारी सेठजी के घर में पूर्व पुण्योदय से सभी प्रकार के सुख भरपूर थे । नीतिकारों ने लिखा है कि पुण्योदय से इस मानव को १६ प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं–

"पहला सुक्ख निरोगी काया, दूजा सुख घर में हो माया ।
तीजा सुख सुत आज्ञाकारी, चौथा सुख मृदुभाषिणी नारी ।।
पंचम सुक्ख सदन हो घर का, छट्टम सुख न करज हो पर का ।
सप्तम सुक्ख चलै व्यौपारा, अष्टम सुख सबका हो प्यारा ।।
नवम निराकुलता हो मन में, दशम न बैर विरोध स्वजन में ।
ग्यारम सुख मन लगै धरम में, बारम सुख न फँसै कुकरम में ।।
तेरम सुख हो साधु समागम, चौदम सुख मरमज्ञ जिनागम ।
पन्द्रह नेम शीलव्रतधारी, सोलम हो अरहन्त पुजारी ।।
ये सब पाय बने गृहत्यागी, धन्य-धन्य वे नर अवतारी ।
इस भव साधु सन्त कहलावें, परभव सुर्ग मुक्ति सुख पावैं ।।"

सोलह सुखों का आगार जिनका गृहस्थ जीवन पुण्यानुबन्धी पुण्य की ओर ही सदा अग्रसर रहता था । उन सेठजी के कोष में धन-धान्य के भंडार भरपूर थे । लक्ष्मी चरणों की दासी थी । चारों ओर सुख-शान्ति का साम्राज्य व बाग-बगीचों में सदा बसन्त नजर आता था । सेठजी की शील और गुणों से सुशोभिता श्रीमति नाम

की शीलपरायणा सेठानी थी । कोमलाङ्गी सेठानी स्वभाव से मृदु, सरल हृदया व गुणों की खानि थी । समय पाकर सेठानी गर्भावस्था को प्राप्त हुई । गर्भावस्था को प्राप्त सेठानी निरन्तर शुभोपयोग में समय बिताती हुई जिनाभिषेक, जिनपूजा, गुरुओं की उपासना, आहार दान आदि चार दान, तीर्थयात्रा, दुखियों में करुणा भाव रखती हुई बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करती रही । सदैव प्रसन्नवदना सेठानी प्रशम भाव को प्राप्तकर स्वाध्याय में मन लगाती हुई शीलवन्ती चौबीस तीर्थंकरों की माता, अञ्जना, चन्दना, सीता आदि सतियों का ध्यान करती रही । बालक को माँ गर्भ से ही संस्कारित करती रही । नवमाह का समय सहजता से आनन्दपूर्वक पूर्ण हुआ ।

शुभ नक्षत्र, शुभ योग में माँ श्रीमति की कुक्षि से गुण और कीर्ति से मंडित रूप और कला में प्रवीण मनोरमा नाम की कन्या का जन्म हुआ । वह कन्या अपने सौन्दर्य से देवकन्या की छवि को भी लज्जित कर रही थी । उसे देखते मनुष्य मन्त्रमुग्ध हुआ सोचता रहता कि यह कौन है ? कोई यक्षी है या सुरकन्या ? लाड़-प्यार इतना था कि पृथ्वी पर तो उसे कभी पैर ही नहीं रखा । सभी उसे अपनी गोद में खिलाते, पिलाते, प्यार से पुचकारते । उसके गंभीर स्वभाव की झलक, उसकी मधुर मुस्कान में ही मानो झलक रही थी । पुण्य का भण्डार, मनमोहक रूप, अपनी तोतली भाषा से उसने नगर के समस्त नर-नारियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया । उसके सौन्दर्य को देखने, उसको गोद में लेने, पुचकारने व प्यार करने के लिये जन-मानस सदा आतुर रहता था । यथायोग्य काल में संस्कारित माँ की संस्कारिता बेटी को जिनालय में ले जाया गया । दिगम्बर वीतरागी मुनिराज के मुखारविन्द से णमोकार मन्त्र का कर्णप्रिय पाठ सुनकर बालिका मद्य-मांस-मधु व पंच उदम्बर फलों का त्याग कर गुरु के कर-कमलों से संस्कारित हो आज जैन बन गई । गुरुदेव ने उसका नामकरण "मनोरमा" किया ।

कन्या का घुटनों के बल चलने व तोतली भाषा में बोलकर मन्त्रमुग्ध करने वाला एक स्वर्णिम काल बीत गया । आठ वर्ष की

बालिका का आगम पद्धति से कुमकुम संस्कार करवाकर माता-पि
फूले नहीं समाये । सत्य ही है "एक अच्छी माता सौ शिक्षकों
बढ़कर है (A good mother is better than hundre
teachers.) । जिस नारी में शिक्षा व संस्कार देने की योग्य
नहीं है वह जननी बनने की भी अधिकारिणी नहीं है । आठ वर्ष व
बालिका को सेठजी ने आर्यिकाओं में श्रेष्ठ गणिनी आर्यिका के पा
अध्ययन के लिये भेज दिया । विलक्षण प्रतिभा की धनी, बुद्धि औ
विवेक में प्रवीण, कला और सौन्दर्य में अनुपम वह कन्या मात्र छ
माह की अवधि में ही सर्व विद्याओं में पारंगत हो न्याय, सिद्धान्त
व्याकरण में दक्ष हो घर लौट आई। ज्ञान की आभा जिसके
मुखमण्डल पर छिटक रही थी ऐसी वह कन्या कर्म सिद्धान्त व
ज्ञाता, हेय-उपादेय के परीक्षण में चतुर हो ज्ञान कला से पू
निखार को प्राप्त हुई । बेटी के कला-कौशल, ज्ञान-चातुर्य को देख
पिता के आनन्द का ठिकाना नहीं था । नीतिकारों ने लिखा है "
के दूध में वह शक्ति है कि माँ चाहे तो एक तीर्थंकर, ऋषि, मु
को उत्पन्न करे, चाहे तो दानव को पैदा करे ।" माँ के संस्क
बालक की प्रथम कक्षा है । माँ श्रीमति के सुसंस्कारों में पली पु
मनोरमा का गांभीर्य, प्रवीणता, धर्मपरायणता आदि गुणों को देख
देख माता-पिता सदा आनन्द से उसे चूमते, प्यार करते व भर
आशीर्वाद दिया करते । कभी माता उसे आलिंगन देती हुई अप
गोद में भर लेती, कभी वह पिता की गोद में बैठकर प्यार भ
वचनों से पिता को मुग्ध कर लेती ।

धीरे-धीरे कन्या का यौवन उभार लेने लगा । चन्द्रकला
तरह वह कन्या बढ़ती गई । अपने यौवन के भार से पिता के लि
चिन्ता का विषय बन गई । सोलह वर्षीय कन्या ने माता-पिता
चैन की नींद को चुरा लिया । चिन्तित पिता विचारने लगे– रू
और सौन्दर्य से इन्द्र की इन्द्राणी तथा बुद्धि और कला में बृहस्पा
की बराबरी करनेवाली इस कन्या का सम्बन्ध कहाँ किया जाये
इसके योग्य वर इस पृथ्वी पर मिलना बड़ा कठिन है–

चिता चिन्ता समायुक्ता, बिन्दुमात्र विशेषता ।
सजीवं दहते चिन्ता, निर्जीवं दहते चिता ।।

सेठ चिन्तातुर हो विचारने लगे– जिसका देव के समान सुन्दर रूप होगा, जो मेरे समान धर-सम्पत्ति से सम्पन्न होगा, ऐसे उत्तम वर का चयन कर उसे मैं अपनी लाड़ली कन्या दूँगा । इस प्रकार मन में विचारणा चलती रही । सेठ ने उत्तम वर की खोज के लिये "बारह कोटि दीनार" का एक सुन्दर नवरत्नोंजड़ित हार बनवाया। समय पाकर सेठजी ने सेठानी को हार दिखलाते हुए कहा– प्रिये ! यह सुन्दर कीमती हार बहुत धन लगाकर बनवाया है । इसकी लागत "बारह कोटि दीनार" है । जो मनुष्य मेरे समान धन-वैभव से सम्पन्न होगा, इस हार को खरीदेगा उसे ही मैं अपनी लाड़ली सुता दूँगा ।

सेठानी फूली न समाई । प्राय: नारी जाति स्वभाव से कोमल होती ही है। एक ओर हर्ष की किरण तो दूसरी ओर चिन्ता की अद्‌भुत रेखा । सेठ विचारने लगे यह क्या हुआ ? हर्ष में विषाद की रेखा क्यों ? कैसे ? सेठानी अनुभवी, धर्मशीला नारी थी, कहने लगी– प्रियवर ! उत्तम वर की खोज में आपका सारा कार्य ठीक है परन्तु मैं चाहती हूँ "वर ऐसा हो जो धनपति के साथ धर्मपति भी हो, वर में अपने योग्य गुणों का भंडार हो । मात्र पैसा ही तो सब कुछ नहीं होता । सेठ जी कहने लगे प्रिये ! तुम एक कुशल श्राविका हो तुम्हारा कथन सर्वमान्य व सौ टका सत्य है । इस हार को खरीदने वाले के धन का अन्दाजा तो निकल आयेगा। किन्तु वर के गुणों का निर्णय कठिन है । यह काम टेढ़ी खीर है ।

सेठानी– प्रियवर ! वैसे चिन्ता की कोई बात है भी नहीं कारण कि यह सब पूर्व पुण्य के आधीन है । सेठजी–प्रिये ! मनोरमा का पुण्य किसी से कम भी तो नहीं है । वह पुण्यराशि है । पुण्य से "धन-वर" दोनों उत्तम ही मिलेंगे। ठीक है, अब मैं पुरोहित को वर की खोज में भेजता हूँ ।

सेठानी—पुरोहितजी को भेजने के पहले धन के साथ वर के

लक्षण भी अवश्य बता दीजिए । कर्तव्य करना, अच्छे से अच्छे वर का चयन करना अपना कर्त्तव्य है । फिर सब कुछ अपने-अपने पुण्य-पाप के आधीन है । "माता-पिता जन्म दे सकते हैं कर्म नहीं" ।

सेठजी—बात तो सब ठीक ही है । शास्त्रों में वर के सात लक्षण बताये गये हैं । मैं उन्हें पुरोहितजी को अच्छी तरह समझा देता हूँ ।

सेठानी—ठीक है ! मैं अभी पुरोहितजी को आपके समक्ष प्रेषित करवाती हूँ ।

पुरोहित जी सेठजी के कक्ष में पहुँचे । सेठजी, जय जिनेन्द्र ! स्वामिन ! हुक्म कीजिये । कहिये किस कारण याद किया हुजूर, आज्ञा दीजिए ।

सेठजी—पुरोहितजी ! अपनी कन्या मनोरमा नवयौवन से पूर्ण हो चुकी है । उसके लिये योग्य वर व उत्तम घर का चयन आवश्यक है । आप इस बारह कोटि दीनार की लागत से बने इस हार को लेकर जाइये । देश-देश में भ्रमण करिये । जो इस हार की बारह कोटि दीनार कीमत देवे यदि उसके सुन्दर, रूपवान, गुणवान पुत्र हो, वर के सात लक्षणों से युक्त हो तो उसको पुत्री देने का निश्चय करो । वर-घर ठीक मिल जाय तो कीमत ही करवाना, द्रव्य मत लेना । मात्र उस वर को टीका करके, पुत्री की सगाई निश्चित कर देना ।

पुरोहित—सेठजी ! आपकी सब बातें समझ में आ गई हैं परन्तु वर के पाँच गुण कौन से हैं । मुझे बता दीजिये, जिससे वर के चयन में सुविधा होगी ।

सुनिये पुरोहितजी—धर्म, नीति और संस्कृति की चिरन्तन विशुद्धि की रक्षा के लिये शास्त्रविधिसम्मत संबंध करना—

कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्या वित्तं च सनाथता च ।
एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया ततः पर भाग्यवशा हि कन्या ।।

कन्या के लिए कुलीन, शीलवान, स्वस्थ, वयस्क, ज्ञानी, धन-सम्पन्न, माता-पिता-बन्धु-बान्धव आदि बहुत सारे कुटुम्बीजनों से सनाथ इत्यादि सप्त गुणों से सम्पन्न वर के साथ कन्या का संबंध करें । इतने पर भी यदि कन्या को श्वसुराल में कष्ट मिलते हों तो उसको अपना भाग्य जानना चाहिये । "सकृत् कन्या प्रदीयते" कन्या जीवन में एक बार ही दी जाती है अर्थात् एक ही बार विवाह की वेदी पर बैठती है । प्रसिद्ध कहावत को तुम जानते ही हो—"तिरिया तैल, हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार" इसलिये इन बातों का पूरा ध्यान रखकर ही संबंध करके आना ।

सेठ की आज्ञा शिरोधार्य कर पुरोहित झूमता, मदमाता चल दिया । देश-विदेश में भ्रमण करता रहा । किन्तु हार की कीमत करने वाला कोई नजर नहीं आया । छह माह बीत चुके । भ्रमता भ्रमता वह कौशल देश में जा पहुँचा । कुशल पुरुषों के इस देश में जहाँ घर-घर पर पताकाएँ फहरा रही थीं, ऐसा वैजयन्ती नामक सुन्दर नगर था । पुरोहित मानो मनोरमा की विजयपताका फहराने हेतु ही उसी वैजयन्ती नगरी में जा पहुँचा । नगरी इन्द्र-नगरी तुल्य सुखकर शोभायमान थी । कहीं मणि, माणिक, कहीं मोतियों के हार लटक रहे थे । विप्र ने विचार किया– यह नगर अति रमणीय है, धनाढ्य है यहाँ कार्य हो गया तो हो गया अन्यथा कहीं भी कार्य होना कठिन ही है ।

पुरोहित विचार ही रहा था कि विशाल अट्टालिकाओं के मध्य एक सेठ के विशाल महल की ओर उसकी दृष्टि जा पड़ी । उसकी निगाह वहीं टिक गई । नगर का सेठ धनपाल महल की छत पर खड़ा नीचे की ओर देख रहा था । पुरोहित को देखते ही उतर आया। पुरोहित ने सम्मानपूर्वक जय जिनेन्द्र किया। कुशल वार्ता हुई । सेठजी विप्र को अपनी दुकान पर ले चले । हीरा, माणिक, मोतियों के विक्रेता जौहरी साहब उचे गद्दे पर जाकर बैठ गये । सेठ बोले– कहो विप्र ! विशेष कोई समाचार हो तो बताओ । विप्र हार दिखाते हुए बोला—सेठजी ! मैं इस कीमती हार को बेचने

निकला हूँ ।

हार को देखते ही सेठ का मन ललचा गया । ओह ! इतना सुन्दर हार, कीर्ति और यश को बढ़ाने वाला है । इस हार की कीमत शीघ्र बताओ । सेठ बोले—हार की कीमत मात्र "बारह कोटी दीनार" है । सेठ आश्चर्यान्वित होते हुए बोला—कितने बड़े सेठ का पाला लाल है विप्र ! बारह कोटि को भी मात्र बोल रहा है । विप्र मुस्कराया– । ठीक है । विप्र ! चार घड़ी की देर हो सकती है, चिन्ता नहीं करना, हार हम घर में सेठानी को पसन्द करायेंगे । यदि उन्हें जम गया तो मुँह माँगी कीमत देंगे । भोले विप्र ने हार सेठजी को दे दिया। हार हाथ में आते ही सेठ के मन में पाप समा गया, विप्र पापी के पाप को समझ नहीं पाया । कवि कहते हैं–

होनहार होय सो होकर रहे, जिस विधि होनी होय ।
पुण्य पाप के बन्ध को, मेट सके ना कोय ।।

"लोभ पाप का बाप कहावत प्रचलित ही है तदनुसार सेठ घर पहुँचकर पत्नी से बोला प्रिये ! भगवान् ने छप्पर फाड़कर यह लक्ष्मी भेजी है, इसे घर में रखो । ये कीमती सच्चे मणियों का हार है इसे छिपाकर अन्दर तिजोरी में ऐसे रखो कि कोई देख न पाये । नकली मणियों का हार मुझे दे दो । विप्र जो इसे लाया है, नादान है, आधी अकल वाला है सच तो वह गँवार है उसे असली-नकली की क्या पहचान ? नकली हार उसे पकड़ा देंगे । पत्नी विदुषी थी । उसे सेठजी की यह बात ठीक नहीं लगी अत: उसने कहा—प्रियवर ! सेठजी ! ऐसा कार्य ठीक नहीं है । आपने उत्तम जैन कुल में जन्म लिया है, ऐसे खोटे विचार तो आपके मन में आना भी नहीं चहिये। आपने जैसा विचार किया है वैसा तो एक रंक भी नहीं करता । फिर आपके खज़ाने में कोई कमी भी तो नहीं है । क्यों ऐसा खोटा विचार करके अपने माथे अपयश का टीका लगा रहे हैं । सच है नारी एक मंत्री के रूप में जो उचित सलाह देती है, उससे पुरुष के बड़े-बड़े कार्य सिद्ध हो सकते हैं । नीतिकारों ने लिखा है—

"जिस घर में नारी को सम्मान नहीं दिया जाता है, उनकी

उचित मन्त्रणा को मान्यता नहीं दी जाती उस घर में किसी भी समय विपत्तियाँ आकर जीवन को घेर सकती हैं" । सेठानी ने बहुत समझाया किन्तु लोभी की आँख नहीं होती। सेठ बोला—कितनी भोली हो प्रिये ! इतने सुन्दर हार को भी ठुकराना चाहती हो । मेरी बात मानो "बारह कोटी दीनार" का मूल्य समझो और चुपचाप रख लो ।

सेठानी ने पुनः हाथ जोड़कर प्रार्थना की "पतिदेव, यह कार्य उचित नहीं है, मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिये । "उल्लू को दिन में नहीं दिखता, कौवे को रात में नहीं दिखता, कामी को न दिन में दिखता है न रात में परन्तु लोभी के तो आँख ही नहीं होती है ।

सेठ को बहुत समझाया पर आखिर तो गँवार ठहरा, अबला नारी पर कुपित हो उठा । लाचार हो कुलवन्ती सेठानी ने हार ले लिया और नकली हार सेठ के हाथों थमा दिया–

होनहार के भाग्य से उपजी कुमति कुभाय ।
नारी सीख मानी नहीं सेठ किये अन्याय ।।

असली मणिमय हार घर में छिपाकर नकली हार ले सेठ दुकान पर पहुँचा और पुरोहित से कुपित होता हुआ जोर से दुत्कारता हुआ बोला– रे ठगिया, दुष्ट, मूरख गँवार तुझे शर्म नहीं आती, चारों ओर दुनिया को ठगता फिरता है । पाँच दीनार का हार है और बारह कोटी दीनार बताता है । ले अपना हार चले जा अपने रास्ते । आगे कभी यहाँ आने की कोशिश न करना नहीं तो सीधा जेल में बन्द करवा दूँगा । राजा के पास शिकायत करूँगा तो वह इतना दण्ड देगा कि जीना मुश्किल हो जायेगा । बेचारा पुरोहित रुदन करता हुआ वहाँ से चला । मन में विचार करने लगा "इस दासता को, नौकरी को धिक्कार है । "पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं" । कहाँ की सगाई, कहाँ का ब्याह अब तो जीने-मरने का सवाल आ गया । यह नकली हार लेकर अपने स्वामी के पास भी जाऊँ तो सेठ मुझे ही ठग समझेगा । चोर ठहरायेगा । हार यहाँ के सेठ ने ठग लिया ये कौन मानेगा । परेशान, भूखा-प्यासा विप्र रोता, चिल्लाता,

नगर के बीच बाजार में पहुँचा और जोर-जोर से पुकारने लगा-मेरा हार धनपाल सेठ ने चुरा लिया, नकली हार मुझे दे दिया है" । बार- बार चिल्लाता रहा पर कोई सुनने वाला ही न रहा । सच है दुनिया की यह रीति ही है—लक्ष्मीवान् पुरुष को कोई चोर नहीं कहता, निर्धन सत्यवादी को चोर कहने में किसी को लज्जा नहीं आती । यही दशा हुई, सभी लोग सेठ को साहूकार और साहूकार विप्र को चोर कहते रहे । बेचारा विप्र सोचने लगा–मेरा तो परदेश में मरण ही हो गया । सब लोग विप्र को ही भला-बुरा कहते रहे । विप्र ने प्रतिज्ञा की– जब तक हार चोरने वाले का पता लगाकर हार नहीं मिल जायेगा तब तक अन्न-जल का त्याग है । एक दिन भूखे प्यासे बीत गया—

प्रात:काल विप्र राजदरबार में जा पहुँचा । राजन् ! मेरी अर्ज सुनिये ! आपके राज्य में धनपाल सेठ महाठग है । मेरी बात ध्यान देकर सुनिये—नगर सेठ ने मेरा मणिमय हार छिपाकर मुझे झूठा, नकली यह हार दिया है । मेरे बारह कोटी दीनार का हार रखकर यह पाँच दीनार का हार दिया है । आप सच्चा न्याय कीजिए नहीं तो मैं यही प्राण तज दूँगा ।

राजा विप्र की बातें सुनकर चिन्तातुर हो विचार करने लगा । न्याय कैसे करूँ, न्याय में जरा चूक हुई तो यह विप्र प्राण तज देगा ।

न्यायप्रिय राजा ने नगर में घोषणा करवाई कि नगर के जितने जौहरी हैं सभी राजदरबार में पधारें । मंत्री, श्रेष्ठी, जौहरी सभी आये, जो मंत्रीगण में प्रधान थे, राजा के समीप बैठे थे । राजा ने मंत्री से कहा-मन्त्रीजी ! इस विप्र का न्याय कीजिए अन्यथा हो गया तो लोक में अपयश फैलेगा । मंत्री ने कहा—राजन्, वार्ता क्या है ? राजा ने कहा–विप्र का कहना है उसका मणिमय कीमती हार लेकर नकली हार नगर के सेठ ने दिया है, इसे किसने ठगा है, पता लगाइये, अन्याय हुआ तो यह प्राण ही छोड़ देगा । मंत्री बोले– राजन्, इस वार्ता का न्याय रहस्यपूर्ण है क्योंकि इसका साक्षी कोई

है नहीं । सेठ को चोर कहें तो सब जौहरी क्रोधित हो उठेंगे और विप्र को चोर कहें तो यह अभी प्राण छोड़ देगा । इसलिए हे राजन् ! यह न्याय हमसे नहीं होगा । राजा ने कहा, फिर नगर में कौन ऐसा बुद्धिमान है जिससे न्याय कराया जावे ।

मंत्री बोले–राजन्, आपके नगर में ९६ कोटी दीनार के स्वामी धर्मात्मा सेठ महीपाल हैं जो अभी आपके समक्ष ही विराजमान हैं । इनके न्यायप्रिय, बुद्धिमान सुपुत्र सुखानन्द कुमार हैं । वे ही इस हार का असली-नकली का न्यायकर चोर का पता लगा सकते हैं अन्य कोई समर्थ नहीं है । राजा ने राजकर्मचारियों को आज्ञा दी, "सुखानन्द कुमार" को शीघ्र यहाँ प्रवेश कराया जावे । इस बीच सेठ महीपाल हाथ जोड़कर प्रार्थना कर कहने लगा– राजन् ! सुखानन्द बिना आदर-सम्मान के यहाँ नहीं आ सकते, मुझे क्षमा करें । राजा ने हुक्म दिया–सेवकों ! सुखानन्द कुमार को राजसी ठाटबाट के साथ दरबार में लाया जावे ।

सैनिक, अंगरक्षक आदि सभी सुखानन्द के महल की ओर जा पहुँचे । राजा का लाजमा, हाथी, घोड़े, असवार, रथ आदि कुँवर को लेने पहुँचे । वहाँ पहुँचते ही किंकर लोग सेठ के महल में पहुँचे । क्या देखते हैं—जहाँ सुखानन्द बैठा है वहाँ मानो दूसरा ही दरबार लगा हुआ है । सभी आश्चर्य से चकित हो स्तंभित रह गये ।

किंकर हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोले– कुँवर ! स्वामी की आज्ञा से हमलोग आपको लेने के लिये आये हैं । महाराज साहब ने आपको याद किया है आप शीघ्र पधारिये । कुँवर कहने लगे– राजा ने मुझे क्यों याद किया ? क्या कोई विशेष बात है ? एक किंकर बोला– कुँवर साहब एक जटिल समस्या है, जिसका न्याय आपकी बुद्धि के चमत्कार से ही किया जा सकता है, अन्य किसी की क्षमता नहीं ।

सुखानन्द कुमार बोले–थोड़ा स्पष्ट बताइये फिर शान्ति से अपन लोग दरबार में चलें । तभी एक सेवक ने कहा– कुँवर साहब, एक विप्र के हार की चर्चा है उसका कहना है सेठ ने हार चुराया है,

असली रखकर नकली दे दिया है । अब न्याय महाराजा साहब ने आप पर छोड़ा है । यदि न्याय नहीं हुआ तो विप्र तत्काल ही प्राण छोड़ देगा ।

सुखानन्द कुमार बोले– सेवकों ! आप लोग १ घण्टा यहीं बैठिये फिर अपने राजदरबार में चलते हैं शीघ्र ही न्याय करेंगे । सभी लोग वहीं बैठे रहे । कुमार स्वयं अपने महल में गये और एक दासी को बुलाकर उसको समझाकर कहा––तू धनपाल की स्त्री के पास जा और कह दे मेरे को धनपाल सेठ ने भेजा है । उनने जो विप्र का हार चुराया है वह दे दीजिये । क्षण भर देर मत करो । सेठ ने हार मँगाया है ।

दासी धनपाल सेठ के घर पहुँची । कहने लगी—मुझे सेठ ने भेजा है आपके पास । विप्र का जो असली हार है, शीघ्र दे दीजिये । सेठ ने कहा है, आदेश का पालन करो, हार तत्काल दे दो । तब स्त्री ने कहा– मैंने सेठजी से बहुत कहा था पाप मत करो, ऐसे कार्य अपने को शोभा नहीं देते, पर सेठ को लोभ चढ़ा था, एक बात नहीं मानी । पर दासी सुनो, हार तो सेठ ने धरा है, सेठ के बिना वह मिलेगा नहीं अत: एक ही उपाय शेष है सेठ आवें और हार ले जावें ।

दासी सारी जानकारी ले कुँवर के पास पहुँच गई और कुँवर को सारा भेद बताती हुई बोली–कुँवर जी ! हार सेठ के घर में ही है । सेठानी शीलवन्ती नारी है उसने सेठ को इस पाप को नहीं करने के लिये बहुत समझाया था पर सेठ ने जरा भी नहीं माना । पर सेठानी का कहना है, हार सेठजी ने अपने हाथों रखा है, मुझे मालूम नहीं और देने का अधिकार भी नहीं है । बेचारी भली नारी है देने से डर रही है, पर यह निश्चित है कि हार उसके घर पर ही है ।

अब तो सुखानन्द न्यायपताका हाथ ले आदर-सम्मान के साथ दरबार की ओर जा रहे हैं । राजसी शान-शौकत, मुख पर गांभीर्य, अपूर्व तेज ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो स्वर्ग से देव कुमार ही

उतरकर आ रहे हैं । घर-घर से नर-नारी उसके अपूर्व रूप, सौन्दर्य को देखने बाहर निकल-निकल कर आ रहे हैं । चारो ओर एकमात्र सुखानन्द के रूप, गांभीर्य की ही चर्चा हो रही है । कुमार प्रसन्नमुद्रा में पुलकित वदन हो राजदरबार में ससम्मान जा पहुँचे । उन्हें देखते ही सारी सभा आदर से उठी । राजा ने बहुत सम्मान दिया और वात्सल्य दृष्टि से देखते हुए अपने ही समीप आसन दिया ।

सत्य है पुण्यवान पुरुष जहाँ जाते हैं, आदर पाते हैं, पुण्य से कौन सी वस्तु प्राप्त नहीं होती ? अर्थात् पुण्यवान के सभी काज सहज सिद्ध हो जाते हैं । श्री कुन्दकुंदाचार्य देव लिखते हैं– "पुण्यफला अरहंता" पुण्य के फल से तीर्थंकर पद भी सहज प्राप्त होता है' अन्य की क्या बात । कोई अज्ञानी जीव पुण्य को हेय कहकर पुण्य की अवहेलना करते नजर आते हैं, प्रभो ! उन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो–

सम्माइट्ठी पुण्णं ण होइ संसार कारणं णियमा ।

मोक्खस्स हेउ होइ, जदि णियाणं ण कुणइ ।। भा०सं०॥

सम्यग्दृष्टि का पुण्य पुण्यानुबन्धी पुण्य होता है, वह संसार का कारण कभी नहीं होता । निदान रहित पुण्य नियम से मोक्ष का कारण होता है । सुखानन्द कुमार ने पूर्वभव निदान रहित सातिशय पुण्य का संचय किया । उसी का फल धन, सम्पदा, निर्दोष विद्या, अधिकार, यश तथा राज-सम्मान आदि प्राप्त हुए । आज का जीव पुण्य का फल तो प्राप्त करना चाहता है पर पुण्य के साधन जिनाभिषेक, पूजा, दान जैसी शुभ क्रियाएँ करना चाहता ही नहीं ।

राजा और कुमार के मध्य कुशल-वार्ता चलती रही । तभी सविनय कुमार ने राजा से स्मरण का कारण पूछा । राजा बोले– कुँवर, मेरा वचन सुनो, इस विप्र का न्याय करो, जिससे जग में यशोपताका फहराए । कोई यह न कहे कि "न्याय अन्ध राजा" है, ऐसा न्याय करो कि अपयश न हो ।

कुँवर ने कहा– विप्र का कहना क्या है ? राजा ने कहा—विप्र

कहता है यह १२ कोटी दीनार का हार बेचने के लिए धनपाल सेठ की दुकान में पहुँचा । उसने इसे ठग लिया । नकली हार देकर असली अपने घर रखकर धक्का दे निकाल दिया है । कुँवर बोले– वह नकली हार कहाँ है मुझे दीजिये । नकली हार लेकर कुँवर वहाँ से चल दिये । राजा से बोले मैं अभी चार घड़ी के भीतर लौटकर आता हूँ तब तक सभा बरखास्त न हो । जय-जिनेन्द्र ।

सुखानन्द नकली हार ले, हाथी पर सवार हो वहाँ से चल दिये। अपने महल में जा पहुँचे । उसी दासी को बुलाया । पाठकगण स्मरण रखें वही दासी जिसने हार सेठानी के पास है ऐसा शोध किया था । दासी उपस्थित हुई–स्वामिन् ! सेविका को आदेश दीजिये । कुँवर बोले– देखो ! धनपाल की स्त्री के पास जाकर यह हार दिखाकर कहो, सेठजी ने वह असली हार शीघ्र मँगाया है, जल्दी करो अन्यथा सेठजी का जीवन खतरे में समझो ।

दासी मदमाती, झूमती हार ले सेठ धनपाल के मकान में जा पहुँची । दासी सेठानी से बोली—सेठानी जी ! मुझे यह नकली हार देकर सेठजी ने भेजा है कि "सेठानी से कहो यदि तुम मेरा जीवन चाहती हो तो झूठा नकली हार अपने पास रखकर असली हार शीघ्र इस दासी को देकर मेरे पास भेज दो । मैं बड़े संकट में हूँ" । दासी ने कहा—सेठ दरबार में घिरे हुए हैं । घर नहीं आ सकते । शीघ्रता करो नहीं तो सेठ सूली पर चढ़ाया जायेगा और उसका घर, लक्ष्मी सभी कुछ लूट लिया जायेगा । कोमलहृदया सेठानी थर-थर काँपने लगी । सिर धुन-धुन कर पीटने लगी । तभी झूठा, नकली हार लेकर विप्र का असली मणिमय हार उस धाय / दासी को देती हुई मूर्छा को प्राप्त हुई ।

धाय मुस्कराती, ताली पीटती हुई मदमस्त चाल चलती हुई कुमार के पास जा पहुँची । असली मणिमय अति मूल्यवान हार देखते ही कुमार के हर्ष व विषाद की दोनों किरणें एकसाथ मुख मुद्रा से झलक उठीं । ओह ! यह मानव धन के लिये कितना बड़ा पाप कर सकता है, धिक्कार है इस लक्ष्मी को । कुमार हाथी पर

सवार भूपति के दरबार में जा पहुँचा । जय-जिनेन्द्र ! कर राजा को एकान्त में बुलाकर कीमती हार सौंप दिया । कुमार ने राजा से हार की प्राप्ति सम्बन्धी पूर्ण समाचार राजा को सुनाया । राजा के हर्ष का ठिकाना न रहा । उन्होंने वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से कुमार को गले लगाया। राजा आश्चर्यचकित हो कुमार से बोले—धनपाल को मैं बहुत धर्मात्मा समझ बार-बार सम्मान दिया करता था यह ऐसा नीच काम कर सकता है ? आश्चर्य है । इसके घर में कभी क्या है, बात समझ में नहीं आती ऐसा क्यों किया ? कुमार बोले– राजन्, नवग्रह लोकप्रसिद्ध हैं यह धन दसवाँ ग्रह है । जिसको इसकी दशा लग जाती है वह "परि समन्तात् ग्रसति" चारों ओर से ग्रसित हो जाता है "विनाशकाले विपरीत बुद्धि" आश्चर्य की कोई बात नहीं है ।

राजा ने धनपाल सेठ को बुलाया । सेठ भयभीत सा आ पहुँचा। राजा ने कहा– सेठजी ! हमारी बात सुनिये, असली हार के बदले नकली हार दे, ऐसी ठगाई करने वाले को क्या दण्ड देना चाहिये । इसका भेद मुझे शीघ्र कहो । सेठ को क्या पता कि मैं पकड़ा गया हूँ। बड़े घमंड में, ऊँची गर्दन किये, लाल-लाल आँखें करते हुए आवेश में आ बोले– ऐसी ठगाई करने वालों को बड़ा दण्ड देना चाहिये गधेपर बैठाकर मुँह कालाकर देश निकाला देना चाहिये और उसका लाखों-करोड़ों का धन लुटवा देना चाहिये ।"

राजा ने तुरन्त ही गधे को बुलवाया । सेठ धनपाल को रंकपाल बनाया, काला मुँहकर गधे पर बैठा नगर में घुमवाया । उसके आगे ढोल बजवाया । चारों ओर देखने वालों की भीड़ जमा हो गई । सच ही है जो भी ऐसे पाप-कार्य करते हैं उनकी ऐसी ही दुर्दशा होती है । उसके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी उसे राजा ने लुटवा दी और नगर से बाहर कर देशनिकाला दिया । धनपाल की सेठानी कहने लगी–सेठजी ! मैंने आपको कितना समझाया, पर एक न मानी । पर-धन को चुराया, अब करनी का फल तो भोगना ही पड़ेगा । बहुत समझाया पर एक जूँ तक न रेंगी । महानुभावों ! जीवन में "अपने घर की रूखी-सूखी खाओ, लाखों वर्ष जीओ" । परधन को

लोष्ठवत् समझ उसका स्पर्श भी कभी मत करो ।

राजा ने विप्र को बुलाया उसका हार देते हुए पूछा भाई ! तेरा न्याय हुआ या नहीं सच बता दे । विप्र–जय हो महाराज ! आप जैसा न्यायप्रिय राजा जब तक इस पृथ्वी पर रहेगा, धर्म तब तक ही रहेगा । राजन् ! आप धन्य हैं जो ऐसा बुद्धिमान, न्यायवन्त कुमार आपके नगर में रहता है । आपके समान भूपति इस पृथ्वीतल पर और कौन होगा ? महाराजा की जय-जयकार, कुमार सुखानन्द की जय-जयकार से सभा विसर्जित हुई, विप्र आनंदित होते हुए अपने डेरे की ओर चल दिया ।

अब आगे क्या हुआ सच्चा हाल सुनिये—विप्र बुद्धिमान था विचार करने लगा जिस कुमार ने न्याय किया है वही हार की कीमत दे पायेगा । वही मनोरमा सुन्दरी को वरण करने का अधिकारी हो सकता है । सुन्दर मूल्यवान हार हाथों में ले विप्र महीपाल सेठ के घर जा पहुँचा । हार दिखाया । सेठ महीपाल ने कहा—पुरोहितजी, ऐसे तो अनेकों हार मेरे घर में हैं । मुझे आवश्यकता भी नजर नहीं आ रही है । पुरोहित आश्चर्य करने लगा जब ऐसे अनेकों हार इनके पास हैं तो इनके घर की सम्पत्ति का तो वर्णन ही नहीं हो सकता । अत: उसने सेठजी से प्रार्थना की मुझे भटकते-भटकते छ: माह से भी अधिक हो गये, पर यह हार बिका नहीं । यहाँ इस नगर में सोचा था उचित कीमत पर बिक जायेगा पर यहाँ भी मात्र आपके अलावा कोई खरीदने वाला नजर आता ही नहीं । सेठ महीपाल धर्मात्मा थे, दया आ गई । बोले—अच्छा पुरोहितजी, हार की सही-सही कीमत तत्काल बताइये । विप्र बोले—हार की कीमत बारह कोटी दीनार है । सेठ बोले ठीक है । भण्डारी को बुलाकार सेठ ने कहा—भण्डारीजी ! विप्र जितना मूल्य कहे इसे शीघ्र देकर यह हार ले लीजिये । अब एक क्षण की ढील भी ठीक नहीं ।

सुनते ही विप्र बोला—सेठजी ! हार सच-सच कहूँ तो बिकने नहीं आया है । इस हार-रहस्य को मैं आपको सुनाता हूँ । ध्यान देकर सुनिये—मालव देश में उज्जैनी नामक प्रसिद्ध नगरी है ।

महीदत्त नामक एक गुणवान सेठ रहते हैं । सेठ धर्मात्मा, दानी, देवशास्त्र गुरुभक्त हैं, उनकी श्रीमति नामक सेठानी धर्मात्मा रानी के सुलक्षणी, देवकन्या सम सुन्दर, चाल में हंसिनी, चन्द्रमुखी मनोरमा नामक कन्या है । गुणों की खानि वह कन्या रत्न सेठ ने आपके गुणवन्त कुमार के लिये दिया है । यह हार आपके सुपुत्र जी के लिये टीका है । यह सुन महीपालजी बहुत खुश हुए, अति आनन्दित हो भाव विभोर हो गये ।

चारों ओर हर्ष की तालियाँ गूँज उठीं । नगाड़े बजने लगे । सारे नगर में बुलावा दिया गया । नगर के सभी नर-नारी जुड़े । स्त्रियाँ मंगलाचार करने लगीं । नगर में अपार आनन्द का वातावरण छा गया । बधाइयाँ दी जाने लगीं । बधावा गाये गये । याचकों को मनचाहा दान दिया गया । सज्जनों को यथोचित सम्मान दिया गया । मंदिरों में पंचामृताभिषेक वृहद्शान्तिधारा, जिन पूजा कराई, शुद्ध वसुविध द्रव्य चढ़ाया गया । पश्चात् जैन विधि के ज्ञाता पंडित को बुलाकर शुभ घड़ी, शुभ मुहूर्त में कुँवर के लिये टीका चढ़ाया गया ।

विप्र को बिदाई में अतुल धन दिया गया । पुरोहित को इतना धन मिला कि उसकी जन्म-जात दरिद्रता मिट गई । विप्र के आनन्द का तो ठिकाना ही न रहा । झूमता-नाचता, कूदता वहाँ से चल दिया । चलते-चलते कई दिन रातों में वह उज्जैनी जा पहुँचा । सेठ महीदत्त विप्र के इन्तजार में कई रात-दिन बिता चुके थे । पुरोहित की प्रतीक्षा में झरोखे में झाँकते-झाँकते सेठजी की नजर एकाएक विप्र पर जा पड़ी । दूर से देखते ही सेठ फूले न समाये । विप्र ने महल में प्रवेश किया । सेठ-सेठानी से सविनय जुहार कर सब शान्त चित्त कुशल वार्ता करने लगे । विप्र ने समस्त वृत्तान्त कहते हुए सुन्दरी मनोरमा सती की सगाई का समस्त वृत्तान्त सुना दिया । विप्र कहने लगा– स्वामिन् ! अपनी बाईजी बहुत पुण्यवान हैं । इनके रूप, लावण्य, गुणों के समान ही चाँद से सलोने, देव सम शोभा प्राप्त, देवेन्द्र सम कीर्ति के धारक न्यायवन्त, प्रियवन्त,

गुणवन्त जँवाई का चयन करके आया हूँ । शुभ घड़ी, शुभ मुहूर्त में सगाई करके आया हूँ । सेठजी ने प्रसन्न हो तत्काल ही रत्नों का हार अपने गले से निकालकर विप्र के गले में डाल दिया । महल में नगाड़े, शहनाइयाँ बजने लगीं । मंगलाचार होने लगे । सब सुहागन नारियाँ मंगलगान करने लगीं ।

मनोरमा की सखियाँ मन बहलाती हुई शृंगार रस में भीगीं, तरह-तरह से उसके साथ विविध वार्तालाप करती हुई बधाइयाँ देने लगीं । मनोरमा प्रारंभ से ही धर्मप्रिया कन्या थी, उसने विचार किया अब गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना ही होगा । जिनालय में विराजमान मुनिराज के चरणों में जाकर ऐसा व्रत लेना चाहिये जिससे श्रावक धर्म का यथोचित पालन कर मैं अपने गृहस्थ जीवन को सुखी बना सकूँ ।

नीतिकारों ने लिखा है—भगवान, गुरु, राजा, ज्योतिषी व वैद्य के यहाँ कभी भी खाली हाथ नहीं जाना चाहिये । तदनुसार विदुषी मनोरमा श्रीफल ले जिनालय पहुँची । जिनदेव को श्रीफल चढ़ा गवासन से नमस्कार कर वहाँ विराजमान दिगम्बर संत गुरुदेव के पास पहुँच गई । तीन प्रदक्षिणा कर चरणों में नतमस्तक हो बैठ गई । करबद्ध हो नमस्कार कर गुरुदेव से बोली– गुरुदेव ! मैं अब गृहस्थजीवन में प्रवेश करने जा रही हूँ मुझे कोई ऐसा व्रत दीजिये जिससे मेरा गृहस्थ जीवन सफल हो । गुरुदेव बोले– बेटी ! तुम धन्य हो, तुमने व्रतों के धारण करने की पवित्र भावना की है, यह भावना पुण्यात्मा, धर्मात्मा जीवों में ही हो सकती है ।

गुरुदेव–बेटी ! मद्य, मांस, मधु का त्याग करो, रात्रि भोजन त्यागकर, पानी छानकर पीओ और नित्य देव-दर्शन करो ।

मनोरमा—गुरुदेव ! यह तो जैन कुल का कुलाचार ही है । मुझे आजीवन ये सब नियम जन्म से ही हैं । मैंने रात्रि भोजन आदि दुष्कर्म कभी किये ही नहीं हैं । मुझे आगे श्रावकाचार के योग्य विशेष व्रत दीजिये ।

गुरुदेव—बेटी ! दसलक्षण का व्रत करो । भादव सुदी पंचमी

से चतुर्दशी तक यह व्रत उपवास अथवा एकासन से स्वीकार करो। मनोरमा ने शिर झुकाकर शिरोधार्य किया। व्रत की विधि बताकर मुनि श्री बोले—बेटी ! तूमने जिनव्रत तो धारण किया है अब शील व्रत धारण करो "शील प्रतिज्ञा सुखकर है, जीवन को पार उतारने वाली है, भाव सहित पालन करने से इसका अपूर्व फल प्राप्त होता है क्यों कि कितना भी जप-तप करो एकशील के बिना सब कुछ व्यर्थ ही है। कहा भी है—

घने अंक जो दीजिये, एक अंक नहीं होय।
तैसे निष्फल जानिये, शील बिना सब कोय ।।

बेटी-शील के दो भेद हैं—एक देश व सर्वदेश। गृहस्थों के एक-देश ब्रह्मचर्य होता है तथा मुनियों के पूर्ण यानि सर्वदेश ब्रह्मचर्य। जिसमें निज त्रिया में सन्तोष है, परस्त्री को देखते ही दोष है वह गृहस्थ धर्म सुखकर है। मुनि, आर्यिकाएँ, क्षुल्लक, ऐलक ये बड़भागी महान् आत्माएँ हैं जो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। मनोरमा सुन्दरी ने कहा—गुरुदेव, मैं गृहस्थाश्रम के योग्य एकदेश शीलव्रत की प्रतिज्ञा लेती हूँ। अपने पति में ही सन्तोष रखूँगी। पतिदेव के सिवा अन्य पुरुषों को पिता व भाई के समान मानूँगी। अपने से बड़ों को पितातुल्य, बराबरी वालों को भाईतुल्य व छोटों को पुत्रवत् देखूँगी। गुरुदेव से आशीर्वाद प्राप्त कर सुन्दरी घर पहुँची।

पिता महीदत्त के व मातुश्री के चरणों को स्पर्श कर आशीर्वाद ले गुरुदेव से ली शीलव्रत की प्रतिज्ञा कह सुनाई। पिता ने बहुत दुलार किया, माँ ने हर्ष से प्यार किया। चारों ओर शादी की तैयारियाँ चल रही हैं। विवाह का शुभ दिवस आ ही गया। वैजयन्ती नगरी से दूल्हा राजा सज-धज कर बारात के साथ रवाना हुए। हाथी, घोड़े, रथ, वाहन पर सवार हो चतुरंग दल अपार सज्जा के साथ, तुरई, मृदंग, भेरी व शहनाई आदि वादित्रों की मधुर आवाजों से मंगलगान करता हुआ सेठ महीपाल व कुमार सुखानन्द अपने सगे-संबंधियों सहित निकल पड़े। चलते-चलते

बहुत दिनों में उज्जयिनी जा पहुँचे ।

इधर उज्जयिनी में घर-घर तोरण द्वार सजाये गये, मोतियों की मालाएँ लटक रहीं थी, जगह-जगह मंगल वाद्य बज रहे थे । नारियाँ मनोरमा को सुगन्धित द्रव्यों का उबटन कर मंगलगीत, बधावा गा रही थी । सखियाँ शृंगार रस से पूर्ण हो मधुर मुस्कान भरती हुई मनोरमा की उदासी को दूरकर बहला रही थीं । सुन्दर शृंगार की हुई मनोरमा एक देवी के रूप में सबके मन को चुरा रही थी ।

उज्जैन के मनोरम उद्यान में बारात ठहरी । ध्वजाएँ फहरा रही थीं । नेगचार प्रारंभ हुए । षट्रस भोजन दिये गये । कोई हाथी पर, कोई रथ में, कोई वाहन पर कोई घोड़े पर, सवार हुए, सेठ महीपाल सज-धजकर हाथी पर सवार हो चले । सुखानन्द के गले में सुन्दर मणिमय बारह कोटी दीनार का हार, अनेक कंठे शोभायमान हो रहे थे । डोला पर सवार कुमार की शोभा अवर्णनीय है । वाद्यों की मधुर ध्वनि गूँजने लगी ।

गीत नृत्य वाद्यों के साथ बारात नगर की ओर रवाना हुई । नगर के नर-नारी दूल्हा को देखते ही तरह-तरह की बातें करने लगे–सेठ महीपाल की पुत्री कितनी पुण्यवान है इतना सुन्दर वर मिला है, कोई कहता– लड़का तो क्या है चाँद का टुकड़ा । कोई कहता–जैसी वधू वैसा वर, जोड़ी तो बेजोड़ है । दूल्हा को देखने के लिये जो जिस अवस्था में था, दौड़ पड़ा, सबके मुँह में एक ही बात थी "रूप और लावण्य तो अनोखा ही है पर गांभीर्य भी कम नही" इत्यादि वार्ताएँ होती रहीं तभी बारात सेठ महीदत्त के घर-द्वार पर आ पहुँची । वर को आते देख सेठ बहुत लुभाये । वर की शोभा करने लगे । तोरण हुआ । सप्तपदी पूर्ण हुई । दोनों वर-वधू के योग्य नियम पूर्ण हुए । दहेज स्वर्णकलश मलमल के खासा, चीन पट्ट, गजमोती के हार, कुण्डल-कड़े और बहुत माल खजाने से दिया गया । माँ ने बेटी को सब वस्तुएँ गृहस्थ के योग्य दीं साथ ही चाँदी की सुन्दर डिबिया, स्वर्ण की माला और एक शास्त्र भी दहेज में दिया और कहा—बेटी, चाँदी की डिबिया में चावल लेकर,

गजमोती रखकर नित्य जिनालय जाना, स्वर्ण की माला से प्रतिदिन णमोकार मंत्र की जाप देना तथा प्रतिदिन शास्त्र स्वाध्याय अवश्य करना। बेटी ने माँ के चरण छुए और आज्ञा शिरोधार्य की। तीन दिवस बारात ठहराई गई। चौथे दिन बारात की बिदा होने लगी तभी पुत्री को सेठजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा—बेटी ! अपने नियमों को दृढ़ता से पालना। ससुराल में जाकर ऐसा कोई कार्य नहीं करना जिससे अपने कुल की हँसी हो। सास-ससुर के हुक्म को सदा शिरोधार्य करना, अपने से बड़ों को कभी जवाब न देना। सुशील कन्या पिताश्री के चरणों में नतमस्तक हो आज्ञा शिरोधार्य कर माँ के समीप आशीर्वाद लेने पहुँची। माँ ने बेटी को प्यार करते हुए कहा– मेरी लाड़ली बेटी ! ससुराल में जाकर सास को माँ समझना, ससुरजी को पिता समझना। सासुजी के सोने के बाद सोना, उनके उठने के पहले उठ जाना। उनकी सेवा ! सुश्रूता करती रहना। पति को परमेश्वर मानना। उनके अनुकूल चलना। अब पितृ घर व पतिघर दोनों कुलों का यश फैले ऐसा योग्य कर्तव्य सदा करती रहना। लाड़ली बिटिया की अश्रुपूरित नेत्रों से बिदाई की गई। जाते-जाते माँ ने कहा—पुत्री ! एक बात और अवश्य ध्यान रखना गृहपति आयें, तो उठकर सत्कार करना, संभाषण में नम्रता रखना, ऊँचा नहीं बोलना, अपनी दृष्टि उनके चरणों पर रखना, जब वे आकर बैठ जायें तो स्वयं उनकी सेवा–सुश्रूषा करना, किसी दासी या नौकरानी को पति-सेवा का अधिकार न देना। सो जायें तब सोना तथा सास-ससुर, पतिदेव सभी के शय्या त्याग से पूर्व उठ बैठना। मेरी लाड़ली, गृहिणी के सारे कर्त्तव्यों को निभाना। बारात बिदा होते ही चारों ओर सन्नाटा छा गया। फूल की तरह महकती, चहकती लाड़ली बेटी आज पराई हो गई–

"नारी जीवन झूले की तरह, इस पार कभी उस पार कभी"।
माँ, बेटी, बहन, पत्नी बनकर इस पार कभी उस पार कभी" ।।

"कहीं धूप कहीं छाया" बारात चलते-चलते वैजयन्ती नगर पहुँच गई। वर-वधू को देखने के लिये सारा नगर उमड़ पड़ा।

राजा ने कुमार का बहुत स्वागत कर बहुत बधाइयाँ दीं। चारों ओर शहनाइयाँ गूँज उठीं। मंगलाचार होने लगे। वर-वधू की सुन्दर जोड़ी देखकर सभी दाँतों तले अँगुली दबाने लगे। जोड़ी क्या है मानों इन्द्र-इन्द्राणी का जोड़ा।

सर्वप्रथम वर-वधू को जिनमन्दिर ले जाया गया श्री जिनेन्द्र देव, शास्त्र व गुरुदेव के चरणों में दोनों ने भावपूर्वक नमन, वन्दन किया पंचामृताभिषेक व अष्टद्रव्य से जिनपूजा की जिससे पाप पंक का प्रक्षालन हो। पश्चात् वर-वधू को तीर्थराज सम्मेद-शिखर की वन्दना कराई गई। तत्पश्चात् गाजे-बाजे के साथ, मंगलगीतों के मंगलाचारपूर्वक वर-वधू को गृहप्रवेश कराया गया। याचकों को दान, सज्जनों को सम्मान दिया गया। विवाह विधि पूर्ण हुई। घर में बधावे, आनन्द भेरी, शहनाइयाँ, मंगलाचार पूर्ण हुए। महीपाल सेठ, सेठानी पुण्यवान, गुणवान, रूपवान, शीलवान वर-वधू की अनुपम जोड़ी को देख-देख फूले नहीं समाते। यह सब पूर्व पुण्य की महिमा है। सुखानन्द और मनोरमा समस्त सुखों को भोगते हुए भी प्रतिदिन देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान, श्रावक के षट्कर्मों का पालन करते हुए सुख से समय बिताने लगे। सच है गृहस्थाश्रम वही धन्य है जहाँ प्रतिदिन देवपूजा आदि षट्कर्म होते रहते हैं अन्यथा वह घर "चिड़ियाघर" के समान है। ईंट, मिट्टी से बने मकान को घर नहीं कहते हैं, घर कहते हैं "सुशील शीलवन्त नारी को"। गृहस्थ जीवन में नर-नारी दोनों को श्रद्धावान्, विवेकवान, क्रियावान होना चाहिये। यदि नारी विवेकशील नहीं तो गृहस्थाश्रम सुचारु रूप से नहीं चल सकता है। मनोरमा जैसी कुलवन्ती वधू यतिघर व पितृघर दोनों की शोभा बढ़ाती हुई "देहली दीपक न्याय" से श्रावक धर्म का पालन कर रही थी।

एक दिवस शय्या पर लेटे-लेटे अर्द्ध निशा बीत चुकी, जिसका दिमाग चिन्ता में घिर गया ऐसे सुखानन्द को नींद नहीं आई। नीतिकार कहते हैं–बुभुक्षित, चिन्तित, वेदनापीड़ित व विरहाग्नि में झुलसते व निन्दक जीवों के पास से निद्रा देवी दूर भाग जाती है।

चिन्ता से पीड़ित कुमार की निद्रा उड़ गई । किस बात की चिन्ता "मैं पिता के भाग्य से कमाई सम्पत्ति से आज तक भोग- विलास करता रहा, मैंने आज तक एक पैसा भी नहीं कमाया, प्रमादी का सुयश जग में कभी भी नहीं फैलता । यह नीति है । मुझ प्रमादी का जग में यश कैसे फैलेगा बस एक ही चिन्ता ने उसकी निद्रा का हरण कर लिया । विचारता है "सब जीवों का अपना-अपना पुण्य है, पिता का पुण्य वैभव है तब तक साथ देगा, पिता के चक्रवर्ती की सम्पदा के समान विलय होगा तब क्या स्थिति बनेगी । वास्तव में उद्यम जग में सुख व यश को देने वाला है, उद्यम के बिना प्रमादी सदा दुखी रहता है । उद्यम से रोड़पति करोड़पति बन जाता है और उद्यम के बिना करोड़पति भी रोड़पति हो जाता है । राजा का रंग व रंक का राजा यह सब उद्यम का ही चमत्कार है । वे चिन्तातुर थे अत: शरीर से पसीना बहने लगा, मुख म्लान हो गया तभी धर्मप्रिया अर्द्धाङ्गिनी जाग उठी । प्रिया बोली– पतिदेव ! आधी रात बीत चुकी, आप किस चिन्ता में डूबे हैं, क्या मुझसे कोई गलती हुई है, मेरे द्वारा आपके किसी कार्य में बाधा हुई है, प्रिये ! मुझसे न छुपाओ, सत्य कहो, अब मेरी निद्रा भी भाग चुकी है । प्रिये ! अभी बहुत समय है तुम सो जाओ । पतिदेव ! सारा जगत् सो रहा है, पशु-पक्षी अपने-अपने स्थान पर सो रहे हैं, मात्र दिगम्बर सन्त और एक आप इस समय जाग रहे हैं । आपको ऐसी कौन सी चिन्ता सता रही है, सारा चन्द्रसम मनोहर मुखण्डल मलीन हो रहा है, शीघ्र कहिये पतिदेव ! अब तो मेरा धीरज भी छूटा जा रहा है ।

कुमार बोले– प्रिये ! मैंने आज तक माता-पिता के भाग्य से भोगों का भोग किया, थोड़ा भी परिश्रम कभी नहीं किया । यदि ऐसा ही रहा तो आगे आने वाले समय में जितने भी पिताओं के पुत्र होंगे वे कुछ भी उद्यम नहीं करेंगे, उद्यम की कला से हीन हो जायेंगे । उद्यम के बिना पुत्र कुलहीन कहा जाता है, अत: मेरा लक्ष्य अपने कर्त्तव्य की ओर जा पहुँचा है । यही चिन्ता मेरे भीतर उपजी है । बाकी तो आप जैसी शीलवन्त, रूपवन्त, गुणवन्त नारी के रहते

चिन्ता किस बात की । प्रिया बोली–प्रियवर ! सुनिये, आपकी यह बात, यह चिन्ता तो उचित ही है, मैं इस सम्बन्ध में आपसे कुछ कह भी नहीं कह सकती, मात्र इतना अर्ज करती हूँ आप यहीं घर में रहकर उद्यम करिये, जिससे भोगों में बाधा न आवे । मुझे वियोगाग्नि में तड़पना पड़े, ऐसा मर्मच्छेदी कार्य भी तो मत करिये, पतिदेव ! आपके बिना मैं एक क्षण भी रह नहीं पाऊँगी । कुमार बोले—हे प्रिये ! कुछ पाने के लिये कुछ खोना ही पड़ता है । मेरी बात ध्यान से सुनो—जो मानव घर में रहकर उद्यम करता है, उसका सुयश नहीं फैलता है । इसलिये उद्यम करने को परदेश जाऊँगा । तुम सहर्ष स्वीकृति दो, मैं शीघ्र लौटकर आऊँगा, फिर ये भी तो ध्यान रखो जैसे तुम मेरे बिना नहीं रह सकती, मैं भी तो तुम्हारे बिना नहीं रह सकता । इकतरफा बात तो है नहीं । प्रिये ! प्रसन्न रहो—आपसी वार्तालाप करते हुए प्रातः हुआ । उषा की लाल-लाल लालिमा चारों ओर बिखरने लगी । धर्मात्मा वर-वधू ने उठकर सामयिक पूर्ण की । नमस्कार मन्त्र का जाप्य आदि किया । स्नानादि से निवृत्त हो दोनों इन्द्र-इन्द्राणी बन जिनालय पहुँचे । विधिवत् दोनों ने जिनेन्द्रदेव का पंचामृताभिषेक पूर्ण कर भावपूर्वक अष्टद्रव्य से पूजा, आरती पूर्ण कर स्वाध्याय आदि कर पुनः घर पहुँचे । वधू ने अपनी सास की सहायता से शुद्ध भोजन बनाया और गोचरी काल में दोनों जोड़े मुनिराज का पड़गाहन कर आहार दान दिया । फिर वधू ने सास, ससुर, पतिदेव को भी जघन्य पात्र मानकर भक्तिपूर्वक भोजन कराया पश्चात् स्वयं भोजन किया । घर में चारों ओर आनन्द की बहार फैली हुई है । सच है, धर्मात्माओं से ही धर्म चलता है, धर्मात्माओं के बिना धर्म पंगु है ।

श्रावकोचित षट्कर्म विधि पूर्णकर पुत्र पिता के समक्ष जा पहुँचे । पिता थोड़ा विश्राम कर रहे थे । पुत्र को आते देख पिता उठ बैठे । पिता बोले–मेरे लाल, आज सुबह से मुख म्लान-सा नजर आ रहा है, क्या स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ी है । पुत्र ने पिता के चरण छुए, सविनय बैठकर बोले—पिताश्री, ऐसी कोई बात नहीं है पर

एक चिन्ता मुझे सता रही है । पिता ने कहा–मेरे रहते चिन्ता की कौन सी बात है बेटा ! शीघ्र कहो, देखो ! सारा चेहरा सूख गया है । पुत्र बोले–पिताश्री, मैं आज तक आपके उद्यम द्वारा अर्जित कमाई से ऐश, आराम व भोग करता रहा । मैंने कभी स्वयं कमाने का विचार, उद्यम करने की बात तक नहीं सोची, यही चिन्ता मेरे मन में सवार है । अब आप ही बताइये इस पृथ्वी पर मेरा सुयश कैसे होगा । महीपाल सेठ आश्चर्य से युक्त हो बोले–बेटा ! तुम भी बिना प्रयोजन की चिन्ता में फँस गये । जब तक तुम्हारा जीवन है तब तक लाखों-करोड़ों नहीं, अरबों का धन अपने पास है, तुम भोग करते रहो, चिन्ता की कोई बात नहीं । कुमार बोले–पिताश्री ! लक्ष्मी चंचल है, पुण्य की दासी है इसका विश्वास करना ठीक नहीं है । क्षण भर में यह राजा को रंक व रंक को राजा बना देती है । जब लक्ष्मी बिछुड़ जाती है तब घर-घर की भीख मँगाती है । मैं उद्यम करूँगा तो आप जैसे धर्मनिष्ठ माता-पिता का यश भी सर्वलोक में फैलेगा । इसलिये पिताश्री अब आप कोटि उपाय क्यों न करें, मैं घर में नहीं रहूँगा, उद्यम करने जाऊँगा ही । पिता ने सोचा ये अपने वचनों से डिगने वाला नहीं है अत: मंगल आशीर्वाद दिया और सिर पर हाथ फेरते हुए कहा बेटा ! मेरी एक बात सुनते जाओ मूल्यवान वस्तुओं से जहाज भरवा लो और हंसद्वीप में जाकर यहाँ की वस्तुएँ वहाँ जाकर बेचो तथा वहाँ की वस्तुएँ खरीदो । कुमार विचारने लगे यदि पिता की आज्ञा नहीं मानता हूँ तो उन्हें भारी दुख होगा अत: आज्ञा शिरोधार्य कर जहाज भरवा लिये और जाने की तैयारी करने लगे ।

कुमार माँ के चरणों का आशीर्वाद लेने पहुँचे । माँ सोचने लगी–आज मेरा लाल इस असमय क्यों आया ? कुमार को देखते ही माँ बोली–बेटा, आज कोई विशेष बात हो तो बताओ । मुझे आज तो बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे हो । कहो, कोई हर्ष का विषय हो तो शीघ्र बताओ । माँ के चरणों में बेटा नतमस्तक हो आनन्दाश्रु छलकाते हुए बोला–माँ, मुझे आशीर्वाद दीजिये । मैं उद्यम करने जा रहा हूँ । माँ की आँखों में विषाद के आँसू, पुत्र की आँखों में

आनंदाश्रु अपूर्व संयोग । माँ से आशीर्वाद ले पुत्र अपनी प्रिया के पास पहुँचे । कुमार बोले–प्रिये ! मैं व्यापार के लिये परदेश जा रहा हूँ । तुम यहाँ सुख से रहो । कुलवन्ती प्रिया ने विचार किया अब यदि मैं इन्कार करती हूँ तो अपशकुन होगा अतः मौन साधकर उदास हो खड़ी रही । कुँवर बोले–प्रिये, थोड़े ही दिनों में मैं शीघ्र लौटकर आता हूँ, किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करें । प्रिया मनोरमा के दुख का ठिकाना न था वह स्तंभित सी खड़ी रही, ऐसा लग रहा था मानो उसके पैरों से पृथ्वी ही खिसकी जा रही है । नारी के अनेक रूपों का वर्णन करते हुए नीतिकारों ने लिखा–

कार्येषु मंत्री, वचनेषु दासी, भोज्येषु माता, शयनेषु रम्भा ।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री, षड्भिगुणैः स्त्री कुलतारिणी स्यात् ।।

स्त्री पति के प्रत्येक कार्य में सलाह देने में मन्त्री का व्यवहार करती है, बोलने में दासी का व्यवहार करती है, भोजन कराते समय माता का व्यवहार करती है, भोगों में रम्भा का व्यवहार करती है । पति के धर्मकार्य में अनुकूल चलती है और पृथ्वी के समान क्षमाशील होती है । इन छः गुणोंवाली रूप और गुणों से मंडित कुलतारिणी, शीलधुरन्धरा मनोरमा ने पति से कहा—पतिदेव ! परदेश जाते हुए मेरे वचनों को सुनते जाइये । कुमार ने प्यार से उसकी ओर देखते हुए बोला प्रिये ! शीघ्र बोलो, तुम्हारे प्यार भरे वचनों को सुनने के लिये ही तो आया हूँ । सुन्दरि नीचे मुख किये पाँवों से जमीन को कुदेरती हुई बोली—प्रियवर ! परदेश में जाकर मुझे मन से भूलिये नहीं, मेरा स्मरण बनाये रखिये और मेरी एक सीख अवश्य लेते जाइये–"स्त्री जाति अत्यन्त चंचल होती है, उस पर कभी विश्वास मत करियेगा, आपसे बड़ी को माता समान जानना, बराबर हो उसे बहन मानना तथा छोटी कोई हो उसे पुत्रीवत् जानना । धन्य है उन नारियों को जो अपने पति को ऐसी उत्तम शिक्षा देकर धर्म व शील की रक्षा करती हैं । कुमार ने सुन्दरि की सीख को धारण कर प्यारभरे नेत्रों से पुनः प्रिया की ओर देखा । कुमार की रत्न व मणिमय दीपकों से प्रिया ने आरती उतारी और

विरह अग्नि से पीड़ित होते हुए धैर्यपूर्वक बिदाई दी । वहाँ से लौटकर कुमार जिनमन्दिर पहुँचे । जिनाभिषेक, पूजन किया, णमोकार मन्त्र का जापकर शुभ घड़ी में प्रस्थान हुआ । जहाज भरवा लिये गये पाँच सौ योद्धा संग लेकर, हाथ में आयुध ले कुमार व्यापार के लिये निकल पड़े । चलते-चलते कुमार हंसद्वीप में जा पहुँचे । नगर में डेरा डाल दिया । अब क्या था, कुमार के आनन्द का ठिकाना नहीं था । व्यापार दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता चला जा रहा था । सच है "स्वयं की कमाई का रूखा-सूखा भी मीठा लगता है, पराया चिकना-चुपड़ा भी गले नहीं उतरता ।" सुखानन्द कुमार के दिन आनन्द से गुजर रहे हैं, पुण्यात्मा जीव जहाँ जाते हैं वहीं बसन्त नजर आता है ।

महानुभावों, दृष्टि को बदल दीजिये, आइये हंसद्वीप से लौटिये, चले पुनः वैजयन्ती की ओर । एक दिवस मनोरमा सोलह शृंगार करके सप्तखंड महल के ऊपर जा खड़ी थी । चीनपट्ट की साड़ी, गले में मोतियन का हार, मोतियों के गजरे आदि पहने थी । सजी-धजी सुन्दरी गुणों में गंभीर अपने प्रियतम के आने की बाट जो रही थी । इसी समय उसी राजमार्ग से राजपुत्र आ निकला । उसकी नजर सुन्दरी पर जा पड़ी । कामबाण से आहत वह "सुध बुध बिसरि गया" । नारी मन में बस गई विचारने लगा वह पुरुष धन्य है अवतार ही है जिसके घर की यह नारी है ।

राजकुमार महल की ओर चला । शयन-कक्ष में पलंग पर सोया-सोया विचारने लगा–क्या करूँ ? वह स्त्री रत्न कैसे प्राप्त हो ? राजकुमार का मुँह सूखने लगा, भूख भाग गई । कोई भी रास- रंग नहीं सुहाता । सोचता है अब किस विधि से यह नारि मुझे मिलेगी । कोई गलत कार्य करूँ, बलात्कार करूँ तो राजा न्यायवन्त है, मुझे दण्ड देगा । इधर-उधर करवटें बदलता रहा । प्राण सूखने लगे, गहरी श्वाँस लेता हुआ वह कामी सुन्दरि की प्राप्ति में बेचैन हो उठा । आखिर एक रास्ता निकाल ही डाला–दासी को बुलाकर राजकुमार उससे बोला–दूती ! तू अभी महीपाल सेठ की हवेली में

जा और उसकी पुत्रवधू को कैसे भी हो महल में मेरे पास ले आ। मैं तुझे इतना इनाम दूँगा कि तेरी जन्मभर की दरिद्रता चली जायेगी। उस बाला के बिना मेरा एक-एक समय भारी हो रहा है। सेठ को मालूम न पड़े ध्यान रखना नहीं तो वह दुष्ट मुझे मरवा देगा। दूती, तू शीघ्र ले आ नहीं तो उसके बिना मेरे प्राण-पखेरू उड़ जायेंगे।

दूती बोली–स्वामिन्! मेरे लिये चुटकी का खेल है। आप चिन्ता न करें अभी उस सुन्दरी की चोटी खींचकर ले आती हूँ। दासी हवेली में कुलवंती मनोरमा के कक्ष में जा पहुँची। बोली–मनोरमा सुन्दरी! तुम कितनी सुन्दर हो, रूप-लावण्य से भरपूर हो, इतना होते हुए भी तुम एक बनिये के घर ब्याही गई हो यह कितना बड़ा पापोदय है। राजकुमार के घर चलो वह तुम्हें पट्टरानी बनायेगा। वहाँ सारा हुक्म तुम्हारा ही चलेगा। सारी सम्पत्ति की मालकिन बनोगी। दूती की बात सुनकर सुन्दरी ने क्रोधित हो चाबुक ले दूती को मारना शुरू कर दिया। उसकी चोटी पकड़ इतना मारा कि वह फटेहाल रोती-चिल्लाती भाग गई। राजकुमार के पास पहुँची। बोली—राजकुमार, वह शीलवन्ती नारी है जीते जी तो मेरे वश में आ ही नहीं सकती। देखो मुझे तो मार-मारकर घायल कर दिया है। इतना सुनते ही राजकुमार बिलबिलाता, मलीन वदन हो खेदखिन्न पड़ गया परन्तु बार-बार यही सोचकर चुप बैठ गया कि मैं बलात्कार भी नहीं कर सकता क्योंकि राजा न्यायवन्त है, दण्ड देगा। मुझे भूपति का डर है अतः काम के बाणों को वह धैर्य के साथ सहन कर गया।

"अहो कर्म वैचित्र्यं" एक दिन दूती को कुबुद्धि उपजी ऐसी बात जो आज तक न हुई उस "घमंडी गर्वीली दुष्टा ने दूती को मारा"। दूती को मारने का अधिकार उसे कहाँ से आया। अब ऐसा कार्य करूँगी, उसे देश से निकला कर बदला लूँगी। बदला लेने की भभकती आग ने मनोरमा के आनन्दमयी बाग में आग लगा दी।

दूती महीपाल की हवेली में गई और सास से कहने लगी–

सेठानी ! तुम्हारे घर की बहू कुलनाशिनी है, जारजाज है, तुमको अभी तक पता भी नहीं है, हम आँखों से देख रहे हैं । यह रोज राजकुमार के पास जाती है, व्यभिचार करती है । कहाँ आपका यह उत्तम कुल और कहाँ यह कलंकिनी पुत्रवधू । इसके निमित्त से अब कुल का नाश अवश्य होगा । सेठानी उदासीन हो तत्काल सेठ जी को बुलाकर सारे समाचार कह सुनाये । सेठ ने कुपित हो कहा– इस कलंकिनी को अभी मेरे घर से निकाल दो । सेठानी मनोरमा के पास जाकर बोली––तुम्हारे पिता के घर शादी है, तुम्हें बुलवाया है इसलिये तुम वहाँ जाओ । सुन्दरी बोली-सासूजी ! ध्यान देकर सुन लीजिये, मैं बिना आदर वहां नहीं जा सकती, मुझे तो किसी ने कोई समाचार दिया ही नहीं । सास बोली–हमको कहकर गये हैं, सास की बात पर भी तो थोड़ा विश्वास करो । अबला, भोली, शीलवन्ती सास-ससुर के कपट को नहीं जान पाई । सास पुनः बोली—तुम्हारे पिता ने मुझे कहलाकर भेजा है इसलिये पिता के वचन मानो । सास के वचन ठुकराना नहीं "बिदाई के समय जो पिता ने वचन कहे थे स्मरण करो ।" सास क्रोध करती हुई बोली–याद है या नहीं बिदाई के समय तेरे माँ-बाप ने क्या कहा था "सास-ससुर जैसा कहें वैसा करना" ।

शीलवन्ती, विनयवन्ती, मनोरमा निश्छल, निष्कपट भाव से आज्ञा को शिरोधार्य करती हुई भयभीत मृगी की तरह मन ही मन तड़फ उठी । सास ने सारथी को बुलाया और एक तरफ ले जाकर कहा– इस दुष्टा कलंकिनी को रथ में बैठाकर ऐसे भयानक वन में छोड़कर आओ कि फिर इसका नाम सुनने को भी न मिले । बीयाबान जंगल में छोड़ आओ ।

वन-वन डोले, सारथि को ले, वो सुखानन्द की नार रे ।
सती मनोरम सुन्दरिया ।।

चारों ओर नगर में कोलाहल मच गया पर रहस्य कोई जान नहीं पाया । चलते-चलते रथ वहीं बीयाबान जंगल में जा रुका । रथ को रोक सारथी बोला–बहूजी ! मुझ पापी को क्षमा करो । मैंने पूर्व

भव में पाप किये उसके फल से मैं किंकर बना और आप जैसी पतिव्रता नारी को यहाँ जंगल में छोड़कर जा रहा हूँ। कहाँ आप जैसी पतिव्रता नारी और कहाँ यहाँ वनवास। सत्य है बहूजी पूर्व भव के कर्म उदय में आये हैं भोगे बिना नहीं कट सकते। किसी ने लिखा भी है–

पूरब भव में किये पाप जब उदय जीवके आते हैं।
घोर विपत्ति उन पर पड़ती, जहाँ कहीं वे जाते हैं।।

जिसने कभी धूप की चिलकी भी नहीं देखी, दुःख का नाम भी नहीं जाना, शेर-चीतों की आवाज तक नहीं सुनी ऐसी कोमलाङ्गी पर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा। सच है, दुनिया के दुष्ट लोगों को दूसरे का राई बराबर पाप भी पर्वत बराबर दिखता है, और अपना पर्वत बराबर पाप राई बराबर भी नहीं दिखता है। दुर्जन लोगों की आँखें चन्द्रमा में दाग को देखती रहती हैं। दुर्जनों को सज्जन फूटी आँख भी नहीं सुहाते।

सारथी की बात सुनते ही सुन्दरी थरथर काँपने लगी। मुख कुम्हला गया। नेत्रों से अश्रुधारा फूट पड़ी। बोली–सारथी जी ! मुझसे क्या गलती हुई, किस कारण मेरे साथ यह व्यवहार किया गया ? क्या आपको कुछ मालूम है। सारथी बोले—एक दूती के कहने में आकर आपको सेठानी ने व्यभिचार का दोष बता। कहते-कहते सारथी सिसक-सिसक कर रो पड़ा। बहूजी—मुझ पापी को धिक्कार जो आप जैसी सती साध्वी देवी पर कलंक लगाया गया। मुझे क्षमा करें। मनोरमा ठिठक उठी। हे प्रभो ! सत्य का न्याय कौन करे। हे सासूजी ! आप तो धर्मात्मा थीं, मुझसे कुछ पूछतीं तो सही, माँ के घर भेजने का मायाजाल रचाया कैसी विडम्बना है। मेरे ससुरजी आपने कितना लाड़-लड़ाया, पिता का दुलार दिया, आपको भी दया नहीं आई, सत्य तो यही है किसे दोष देना "पापोदय में अपना भी पराया हो जाता है"। पर सारथी ! थोड़ी भी चर्चा तो करते ऐसे विश्वासघात करने से क्या होगा। ठीक है धैर्य से कार्य कीजिये। णमोकार मन्त्र का जाप करती है, अपने कर्मों

को कोसती है, अश्रुधारा बहती है पर सत्य का साहस छोड़ती भी नहीं है ।

सुन्दरी मनोरमा सारथी से बोली—भाई ! मेरे वचनों को सुनो– पुत्री के दो ही घर शरण हैं या तो मातृघर या पतिगृह (पीहर या ससुराल) । मैं ससुराल से तो निष्कासित हुई हूँ अब मायके पहुँचाकर आप अपने स्वामी के घर चले जाना-सारथी ने सुनते ही रथ उज्जैन की ओर बढ़ाया । भूखी, प्यासी मनोरमा का शरीर सूखने लगा । चिन्ता, अशान्ति से मन विह्वल हो उठा । अबला कर भी क्या सकती है, बस 'बड़ा करे सो न्याय' नीति को सोचकर चुपचाप प्रभु का ध्यान करती रही । रात-दिन चलते रथ उज्जैन के उद्यान में जा पहुँचा । सारथी ने रथ सुन्दरी के पीहर की ओर घुमाया तभी सती मनोरमा बोली–सारथी ! मेरी दायीं आँख फड़क रही है अत: रथ एकाएक वहाँ मत ले जाओ । पाप के उदय में मित्र भी शत्रु हो जाते हैं, मुझे ऐसा लग रहा है, वहाँ भी मुझे सहारा नहीं मिलेगा । सारथी बोला–बहूजी ! माँ कभी डाकिन नहीं होती, कोई नहीं तो माँ तो स्थान देगी ही । मैं स्वयं जाकर खबर देता हूँ ।

सारथी महीदत्त के महल में पहुँचा । सेठजी से कहा, आपकी पुत्री का रथ उद्यान में खड़ा है, आपकी आज्ञा हो तो ले आऊँ । तब सेठ ने विचार किया मेरी लाड़ली कन्या बिना बुलाये यहाँ कैसे आई, क्या बात है, पहले पता कर लें । सेठ ने किंकर से पूछा– उसके साथ कितने हाथी, कितने घोड़े, कितने रथ, कितने प्यादे हैं ? कितने दास-दासियाँ हैं, अंगरक्षक व सैन्यबल कितना है ? सारथी गुर्राकर बोला–सेठ होगें कोठीध्वज तो क्या लाभ ? उनके धनवैभव उनके अपने घर के पर शीलवन्ती बहूजी को तो अकेले ही भेजा है, अभी हम कुल दो प्राणी ही हैं—बहूजी और मैं । दुख की मारी बहूजी नगर के बाहर बहुत भारी रुदन कर रही हैं । माता-पिता को अपना कर्तव्य देखना चाहिये । सुनते ही सेठ तो झुँझला पड़े "अवश्य ही कोई कलंक लगा है, तभी इसे घर से निकाल दिया है ।

सेठ ने किंकर को आज्ञा की–देखो उसे समझा दो कि पिता ने कहा है–"तुमने मेरे कुल में कलंक लगाया है, अब यहाँ आकर मुझे मुँह भी नहीं दिखावे" । सुनते सारथी सिहर उठा । उल्टे पाँव चल दिया । विचारने लगा–हे प्रभो ! कर्म के आगे न्याय की कोई बात ही नहीं होती । पापोदय में माता-पिता, भाई-बन्धु सभी पराये हो जाते हैं । सारथी से बहू ने पूछा–भाई ! माँ, पिता ने क्या कहा ? सारथी कुछ नहीं बोला । सुन्दरी समझ गई, जोर-जोर सी चीख मार कर रो पड़ी । हे माँ, हे पिताश्री, आपको अपनी सन्तान का भी विश्वास नहीं । सच, मेरी माँ तो ऐसा कर नहीं सकती पर पिता ने माँ तक तो पहुँचने ही नहीं दिया । माँ कभी परायी नहीं होती पर पुरुषों के सामने उनका वश भी तो नहीं चलता । पर भाई तो कुछ साथ देते नहीं उनका दोष भी क्या ? पिताजी ने किसी तक समाचार देने ही नहीं दिया । ठीक है, कर्म जो नाच नचाये, नाचना है । पुनः रो पड़ती है । रथ लेकर सारथी जंगल की ओर पहुँचा । अपार रुदन-करता हुआ बोला, मातेश्वरी, मेरे वश में अब कुछ भी नहीं है । कर्म में लिखा है वह निश्चित है । कर्म के लेख मिटाये नहीं मिटते । "साध्वी को रथ से उतार दिया" । दुखित मना मनमार कर उसे बीयावान जंगल में छोड़कर चल देता है पुनः लौटता है, फिर फिर कर लौटता है । क्या होगा, इस सती-साध्वी का, कोई भयानक जीव-जन्तु खा गया, सर्प डस गया तो क्या होगा ? मन-मारकर हृदय को कठोर बना सारथी रुदन करता हुआ चलता बना । अभी तक तो सारथी साथ में था अब तो वह महलों की रानी सुनसान जंगल में अकेली रह गई । "महलों की रानी जंगल में" पापों की असह्य पीड़ा सहन करती हुई कर्मों का नंगा नाच देख रही है । भयानक जंगल में कोमलांगी मनोरमा बैठी है, घना जंगल, अमावस्या की काल रात्रि-हाथ से हाथ नहीं दिखता । णमोकार मंत्र का स्मरण कर रही है । कभी सिंह की दहाड़, कभी सर्प की फुंकार, कभी रीछ, रोझ की आवाजों से वह भयभीत है । रात को एक समय भी नींद नहीं मात्र प्रभु भक्ति ।

प्रातःकाल हुआ कहीं गिरि, कहीं गुफा । ऐसे भयानक वन में

बैठी सुन्दरी एकक्षण को भी धीर नहीं धारण कर पा रही थी। शरीर थर-थर कांप रहा था। बदन कुम्हला गया, आँसुओं की धारा निरन्तर बह रही है, पूर्व कर्मों का फल विचारती हुई कभी गिरती है कभी पड़ती कभी सिर पीटती है पुनः णमोकार मन्त्र का जाप करती हुई शान्ति को प्राप्त करती है–रोती हुई बार-कहती है–हे तात ! आपने मेरा न्याय क्यों नहीं किया, हे माँ, नवमास पेट में रखकर भी एक क्षण में जंगलों में अकेली छोड़ते तुझे तनिक भी दया नहीं आई, हे भाई, बचपन में एक साथ खेलने वाले तुझे भी दया नहीं आई तूने खबर तक न ली। मेरे स्वामी ! आप व्यापार के लिये परदेश गये और मुझ पर ये असह्य दुख आ पड़े। स्वामी ! पतिदेव ! मैं आपके चरणों की दासी आपके पीछे मेरी यह दुर्दशा हुई है, मेरे जीवन को यहाँ फाँसी लगी है। स्वामी, मुझ दुखिया की करुण कथा सुनिये—मैं निर्दोषा ससुराल से भी निकाली गई और पीहर में भी मुझपर किसी को दया नहीं आई। हे पतिदेव ! इस भयानक जंगल में मुझ अभागिन का कौन शरण है ? हे स्वामिन् ! स्वप्न में आकर दर्शन दीजिये, मुझ दुखिया की अर्ज सुन लीजै।

शीलवन्ती के रुदन को सुनकर जंगल के पशु-पक्षी भी रुदन करने लगे। पेड़-पौधे शीलवती के दुःख से मुरझा गये। शील का प्रभाव देखिये किसी भी क्रूर प्राणी ने उसे कष्ट नहीं पहुँचाया। सभी प्यार से समीप में जा बैठे। फिर भी मन में धीरज धरती हुई पंच-परमेष्ठी का स्मरण करती हुई, सती, साध्वी जिनवर के चरणों का ध्यान करती रही–

एक तेरा ही मुझको सहारा, तुझ बिन दीखै ना कोई हमारा।
जय-जय शान्ति प्रभो जिन स्वामी, आये हैं तेरे दर पर हम भी।
अपनी आँखों का कर दो इशारा, तुम बिन दीखै न कोई हमारा।।

"दुबली गाय दो आषाढ"-कष्ट पर कष्ट–

राजगृही नगरी का एक राजकुमार उसी अरण्य में वनक्रीडा को आया। उसकी दृष्टि शीलवती मनोरमा की ओर जा टिकी। यह कौन है–कोई देवकन्या है या कोई यक्षी है ? उसके भीतर काम-

वासना जाग उठी, उसने अबला को बलात् रथ में बैठाया और रथ हाँक दिया । दुख में दुख बढ़ गया । रथ घर पर जा पहुँचा । राजकुमार ने उसे रनिवास में भेज दिया । षट्रस भोजनपान पहुँचाया। कई दिनों की भूखी प्यासी उस देवी सुन्दरी ने अन्नपान का त्याग कर दिया । अन्न-जल का त्यागकर णमोकार मन्त्र जपती बैठी रही । रनिवास में बैठी-बैठी वह कभी रुदन करती है कभी जाप करती है । ऐसा करुण रुदन था मानो मोटे-मोटे घन ही बरस रहे हैं रात्रि का एक पहर बीत गया । राजकुमार मदमाता सुन्दरी के पास आने को तैयार हुआ । सुन्दरी विचारती है अब राजकुमार आयेगा, मेरे शील को दाग लगायेगा । काँपने लगी, वदन कुम्हला गया । जिस प्रकार मीन थोड़े जल में तड़फती रहती है वैसे ही रनिवास में जोर-जोरसे रुदन करती हुई उस सती की दुर्दशा देखते नहीं बनती । वह प्रभु चरणों में प्रार्थना करती है–

"सुनियो जिनदेव हमारी, तुम तो करुणामृत धारी ।
भोगे दुख मैंने अनन्ता, तारो केवलि भगवन्ता ।।
सीता को शील बढ़ायो, द्रोपदी को चीर बढ़ायो ।
मम कष्ट निवारो सारो, आयो मैं शरणे थारो ।।"

राजकुमार मेरे पास आयेगा–

"शीलभंग जो मेरा होवे, प्राण नाश मैं करूँ तभी ।
इक क्षण भी जीऊ नहिं स्वामी, करी प्रतिज्ञा सही, सही ।।"

इधर शीलवती एकाग्र चित्त हो भक्ति में लीन हो गई । उधर प्रथम स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र की सभा लगी । सभी देव सभा में एकत्रित हुए । अवधिज्ञान नेत्र से इन्द्र ने मनुष्यलोक की सारी बात को जान लिया । तब सौधर्म इन्द्र ने देवों से कहा—देवगण ! मेरी बात को ध्यान देकर सुनिये–भूलोक में एक शीलवती नारी विशेष कष्ट में है । एक राजकुमार मद से भरा तिरिया के शील को भंग करना चाहता है, बड़ा व्यभिचारी है । यदि उस दुष्ट ने बलात् उसका शीलभंग कर दिया तो वह बाला प्राणों को तत्काल ही त्याग कर देगी । यदि उसके प्राण निकल गये तो संसार से शील का नाम उठ

जायेगा । व्यभिचार के भय से कोई भी स्त्री पति की आज्ञा पालने वाली नहीं होगी । जिनधर्म का नाश हो जायेगा और फिर कोई भी प्रतिज्ञा को धारण नहीं करेगा । एक देव को बुलाकर इन्द्र ने आज्ञा दी–जाओ, भूलोक में जाकर सती मनोरमा का संकट दूर करो । उस अहंकारी राजकुमार को अपने पाप की सजा अवश्य दो । देव इन्द्र की आज्ञा पाकर तुरन्त ही वृद्ध का रूप बनाकर, लाठी टेकता हुआ, कुछ-कुछ खाँसता भूलोक में आया और रनिवास के द्वार पर आकर बैठ गया । इधर राजकुमार आया और द्वार पर उस वृद्ध को देख क्रोधित हो कहने लगा–तू कौन है ? यहाँ क्यों आया ? वृद्ध कहने लगा मैं सुन्दरी का किंकर हूँ । तुम कौन ? जानते हो मैं अभी उसका सारा भेद कहता हूँ । मेरे सामने से हट जाओ राजकुमार बोला––मुझे सुन्दरी के पास जाने दे, तू एक तरफ हो जा । तू रंक हट यहाँ से, मेरे मार्ग को रोकने वाला, तेरी इतनी हिम्मत कहाँ से हुई । तू अपने रास्ते चला जा नहीं तो अभी सारा खेल दिखाता हूँ । देव बोला–हे कुमार ! तेरे सारे वचन असार हैं ध्यान देकर सुन ले "सुन्दरी के हुक्म बिना मैं तुझे भीतर जाने नहीं दूँगा । इतना सुनते ही कुमार के नेत्र लाल-लाल हो गये । राजकुमार भेद नहीं जान पाया और देव के साथ भिड़ गया । अतिरंक जानकर कुमार ने उसे मारना शुरू किया । किन्तु जैसे अग्नि में घी डालने पर बढ़ती है वैसे ही देव ने प्रचण्ड शक्ति से उस कुमार को पकड़कर तीन बार धरती पर पछाड़ दिया । गला पकड़कर हाथ-पैर बाँध दिये । पावों में बेड़ी हाथों में हथकड़ी डाल दी और मुसक स्वयं खींच ली । फिर चाबुक ले उस चाबुक से मारना शुरू कर दिया और अति निन्द्य वस्तु लेकर उसके मुँह में भर दी । राजकुमार बिलख-बिलखकर रोने लगा । मन से धैर्य छूट गया । मारने वाला कोई दिखता भी नहीं ! देव ने उसे ऐसी मार लगाई । तब देव ने कहा अभी भी समझ रहे हो या नहीं, बेचारा रोता रहा, क्या बोलता ? कैसे बोलता ? तब देव ने कहा––राजकुमार ! अभी भी मुद्दे की बात कहता हूँ ध्यान दे सुनो–तुम मनोरमा सुन्दरी का शरणा लेओ जिससे तुम्हारे प्राण बच सकें, अन्यथा प्राणपखेरू अभी उड़े ही जानो । यदि तू उस सती पर

चढ़ना ही चाहता है तो तुझे प्राण तजने पर भी नहीं छोड़ूँगा । तू पाताल में डूब जाये तो तेरे प्राण वहाँ से निकालकर हरूँगा । इतना सुनते ही राजकुमार तत्काल ही सुन्दरी के पास पहुँचा । मन में अति भयभीत और संशय को प्राप्त हुआ दोनों हाथों को बाँधकर सुन्दरी के चरणों में शीश रखकर बोला–हे देवी, हे बहिन, मेरी लाज रखो । मुझ पापी से जो गलत कार्य हुआ उसे क्षमा करो, मुझे प्राण दान देओ ।

सुन्दरी विचारने लगी–क्या कारण हुआ जो यह यहाँ क्षमा माँगने आया । वह कुछ रहस्य नहीं जान पाई । फिर भी विदुषी नारी तो थी ही, समझते देर भी न लगी–जिनदेव ने सहायता की है । जिनदेव ही निरपेक्ष बन्धु हैं, दीनानाथ हैं । उन्हीं की दया से यह सब कार्य हुआ है । जिनदेव के बिन इस जगत् में और अन्य खबर लेने वाला है भी कौन ? सच ही लिखा है–

जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी ।
और किसी का क्या यह देह जुदी होगी ।।

और भी कहा है–

कालसिंह ने मृग चेतन को घेरा भव वन में ।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में ।।
मंत्र यंत्र सेना धन संपति, राजपाट छूटे ।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटै ।।६।।
चक्ररत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आया ।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया ।।
देव-धर्म-गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई ।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई ।।७।।

सुंदरी पुकार उठी अपने वीतराग प्रभुको–हे प्रभो ! अब मेरी सहाय कीजिये इसे बन्धन मुक्त कीजिये । सुन्दरी के हुक्म से देव ने उसके सारे बन्धन छोड़ दिये । फिर देव ने अपना असली रूप प्रकट किया जो सुन्दरी को दिखाई दिया । देव ने शीलवन्ती के चरणों में शीश झुकाते हुए कहा–हे देवी ! आप जैसी पतिव्रता नारी इसी

पृथ्वीतल पर अन्य नहीं है । आपकी चर्चा इन्द्र की सभा में चल रही हैं । इन्द्र भी आपके शील की प्रशंसा कर रहा है । अब आपको किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं करना है । हम आपके आसपास ही है कोई संकट अब नहीं आयेगा । अब थोड़े ही दिनों में आपका अपने पतिदेव से मिलाप होगा । इतना कह उस अबला को धैर्य बँधा देव अपने स्थान को चला गया । सत्य है, यह शीलव्रत का ही प्रभाव है जिसके प्रभाव से देव भी किंकर बन गया । इसलिये प्रत्येक नर-नारी को सुखशांति व कष्टों से मुक्ति पाने के लिये शीलव्रत की प्रतिज्ञा अवश्य करनी चाहिये । तभी राजकुमार ने विचार किया यह नारी भोजन-पान कुछ नहीं करती है, यदि यहाँ मर गई तो जीवघात का पाप और चढ़ेगा अत: वह उसे रथ में बैठाकर उसी वन में छोड़ आया जहाँ से लाया था । अब सुन्दरी की हिम्मत बढ़ गई, धैर्य जाग उठा, समस्त भय दूर हो गया । सती वीर नारी, महादेवी निर्जन वन में बैठकर एकमात्र णमोकार मन्त्र का जाप कर रही है । देखिये, कर्मों का नाटक । अब वह कर्मों का सारा नाटक मात्र दर्शक बनकर देख रही है ।

दिन फिरते देर भी नहीं लगती । जीवन सुख-दुख की माया है, बस उसी का अनोखा खेल देखिये, आगे क्या हुआ ? पाठकगण भी उत्सुक नजर आ रहे हैं । आइये आगे का हाल दिखायें–

उपसर्ग विजेता भगवान पार्श्वनाथ की जन्म नगरी काशी देश बनारस नगरी जो कि आज भी स्वर्ग के समान शोभा को प्राप्त है उस नगर का सेठ धनदत्त किसी कारण भ्रमण करते हुए उसी वन में आ पड़ा । उसे दूर से देखते ही एक क्षण के लिये पतिव्रता पुन: भयभीत हो उठी । किन्तु जैसे-जैसे वह निकट आया, मनोरमा का भय दूर होता रहा कारण उसके नेत्रों से अपूर्व वात्सल्य टपक रहा था, धर्मात्मा के मुखमंडल से धर्म की अपूर्व आभा झलक रही थी । धर्मप्रिय सेठ ने पूछा–हे बाई ! तुम यहाँ किस कारण बैठी हो, किसकी पुत्री हो, किसकी पुत्रवधू हो, किस कारण इस अवस्था को प्राप्त हुई हो । सेठ धनदत्त के वचन सुनते ही मनोरमा के नेत्र

अश्रुधारा बरसाने लगे। अपनों को देखते ही दुख उभर कर सामने आता है। सेठ ने प्यार भरे वचनों में कहा–बेटी ! धीरज धरो मुझे अपना परिचय दो, मैं शीघ्र ही तुम्हें इस कष्ट से मुक्त करूँगा। शीलवती ने धैर्य बाँधकर कहा मैं मालव देश में उज्जयिनी नगरी के धर्मप्रिय सेठ महीदत्त की पुत्री हूँ तथा कौशल-देश में वैजयन्ती नगरी के धर्मात्मा सेठ महीपाल के धीर-वीर-गंभीर पुत्र सुखानन्द की धर्मपत्नी हूँ। पति व्यापार के लिये परदेश गये हैं इधर पूर्व कर्मोदय की तीव्रता में मैं आज वन-वन में भटक रही हूँ। धनदत्त के नेत्र अश्रुओं से छलछला उठे, उन्होंने मनोरमा से कहा-बेटी मनोरमा ! बहुत दयनीय अवस्था को प्राप्त हो चुकी हो, मैं तुम्हें पहचान नहीं पाया मैं तुम्हारा मामा धनदत्त हूँ। तुम मेरी बहन श्रीमति की पुत्री मेरी भाञ्जी हो। मामा का नाम सुनते ही मनोरमा मामा से लिपट-लिपटकर रोने लगी। सिसकियाँ भरने लगी। मामा का दिल भी भर आया बोले–बेटी ! मेरी मनो, तुम्हें यह कष्ट कैसे हुआ ? सुन्दरी ने आपबीती पूर्ण घटना बता दी, मामा की गोद में कुछ क्षण शान्ति को प्राप्त कर वह चित्त में शान्ति को प्राप्त हुई। मामा बोले–बेटी, तुम्हें धन्य है, तुमने इस कठोर प्रतिज्ञा का पालनकर कठोर परीक्षा में सफलता प्राप्त की इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है। मामा ने उसका मुँह धुलाया, अश्रु पोछे और कहा–बेटी, अब चलो शीघ्र ही बनारस चलो, आज से तुम्हारा सारा कष्ट दूर हो गया। अब तो चिन्ता की कोई बात ही नहीं रही।

मामा ने उसे हाथ पकड़कर बड़े वात्सल्य से, प्यार से रथ में बैठाया। रथ तत्काल ही चल दिया, चलते-चलते कुछ ही दिनों में रथ बनारस आ पहुँचा। रथ से मनोरमा के साथ सेठ को उतरते ही सेठानी कुछ क्षण संभ्रान्त-सी खड़ी रही। पश्चात् सेठानी से परिचय कराते हुए सेठ बोले–यह मेरी भाञ्जी है। मनोरमा ने मामी के चरण स्पर्श किये और मामी से लिपटकर रुदन करने लगी। मामी ने बहुत धैर्य बँधाया। तभी सेठ ने कहा–प्रिये ! मेरी भाञ्जी का दिन दूना सम्मान करना, थोड़ा भी अपमान न हो यह ध्यान

रखो। इस शीलवन्ती के चरण-कमल आज मेरे घर में पड़ने से मेरा घर पवित्र हो गया है।

प्रिये ! बहुत दिन बीत चुके हैं, अन्न, पानी भी इसने ग्रहण नहीं किया। सर्वप्रथम इसके स्नान आदि की व्यवस्था कर इसे पारणा कराओ। मेरी बेटी। मनोरमा ! शीघ्रता करो सब चिन्ता छोड़ो, स्नान कर सर्वप्रथम भगवान पार्श्वनाथजी के दर्शन को चलें। मनोरमा स्नानादि कर तैयार हो रही है–

इधर द्वार पर रथ खड़ा है, हाथों में रत्नों का पुञ्ज ले सेठ ने अपनी भाञ्जी को दिया बोले–बेटी ! चलो सर्वप्रथम जिनदेव का दर्शन करो, ये रत्नपुंज चढ़ाओ पश्चात् शीघ्र आकर पारणा करो, बहुत लम्बे समय के उपवास हो चुके हैं। मनोरमा के नेत्रों में आनन्दाश्रु छलछला उठे। मामा-भाञ्जी जिनालय में पहुँचे भक्तिपूर्वक जिनाभिषेक, पूजा आदि पूर्णकर पुनः लौटे। कई दिनों के उपवासों के बाद आज सुन्दरी को मामी ने बहुत प्यार से पारणा कराया। चारों ओर हर्ष की लहर छा गई। अब तो मामी उस मनोरमा को प्रतिदिन षट्रसमय भोजन देकर बड़े आदर व सम्मान के साथ रखने लगी।

शीलवती तो मामा के घर जा आनन्द से रहने लगी इधर आगे शीलवान् पुरुष का घटनाचक्र कैसे करवट ले रहा है, पाठक उत्सुक हैं, आइये क्या हुआ पढ़िये–

यहाँ की बात इधर ही रह गई, उधर हंसद्वीप में ध्यान दीजिये। पाठकों को जागृत होना है। शीलवन्त, गुणवन्त सुखानन्द वणिक अपनी वाणिज्य कला से भरपूर संपत्ति कमा रहा था। हंसद्वीप में उस समय उसकी बराबरी करने वाला कोई था ही नहीं। पिता की आज्ञा-अनुसार इधर की वस्तु उधर बेचता, उधर की वस्तु जा-जाकर खरीदता। अरबों की संपत्ति का मालिक बन गया। अब कुमार पुनः वैजयन्ती नगर लौटने की तैयारी करने लगे। माता-पिता की स्मृति हो आई। कुमार के नेत्रों में मनोरमा की विरहाग्नि का चित्र झलक उठा। वह शीलवती मेरा इन्तजार कर रही होगी।

उसका एक-एक दिन एक-एक वर्ष की तरह बीत रहा होगा। ठीक है प्रिये ! मैं अतिशीघ्र आ रहा हूँ। प्रिया की स्मृति करते-करते कुमार निद्रा देवी की गोद में लेट गये।

प्रातःकालीन मंगल बेला में जिनदेव का स्मरण कर उठे कुमार ने सोचा हंसद्वीप का राजा है वह न्यायवन्त है या नहीं, प्रजापालक है या नहीं, एक बार दरबार में जाकर देखूँगा। हाथी पर सवार हो कुमार भेंट लेकर राजदरबार में जा पहुँचे। कुमार जब दरबार में पहुँचे तब ऐसा लगा मानो देवकुमार ही आया है। सभा के सभी लोगों ने उठकर राजा के समान उसका आदर किया। सत्य ही है, पुण्यवान पुरुष जहाँ भी जाते हैं, वहाँ आदर-सम्मान पाते हैं। कुमार ने भेंट में सुन्दर मणिमय हार, अनेकों रत्न भेंट कर राजा का अभिवादन किया। मंत्रीवर्ग ने पान का बीड़ा देकर पुनः सेठ के समान कुमार का सम्मान किया।

यह सब दृश्य रनिवास की एक दासी ने देख लिया और सारा वृत्तान्त जाकर रानी से कह सुनाया। दासी कहने लगी–स्वामिनी ! एक परदेशी सेठ कुमार राजा के दरबार में आया है। दिखने में मानो रूप का डला ही है। उसके समान अन्य कोई पुरुष इस पृथ्वी पर नजर नहीं आता। वह कामदेव को भी प्रताड़ित करने वाला मानो देवकुमार ही है। रानीजी, आपके राजकुमार तो उसके सामने रंक ही दिखाई देते हैं। क्या वर्णन करूँ रानी जी मेरा तो मन मुग्ध ही हो गया।

सुनते ही रानी के नेत्र चौंधिया गये, वह तृषातुर हो दासी से बोली–कुमार को शीघ्र ही महल में उपस्थित किया जाये। दासी तुरंत ही राजदरबार में पहुँची और राजाज्ञा से कुमार से बोली–सेठ पुत्र, कुमार ! आपको शीघ्र ही रनिवास में चलना है। महारानीजी की आज्ञा है आप शीघ्र रनिवास में पधारिये। इतना सुनते ही राजाज्ञा ले कुमार, गजमोतियन का हार साथ ले रनिवास में महारानीजी के पास जा पहुँचे। रनिवास में पहुँचते ही उन्होंने गजमोतियन का मूल्यवान हार रानीजी को भेंट किया। रानी बहुत प्रसन्न हुई। जैसा

सुना था वैसा ही इसका रूप है । रानी ने वह हार उस कुमार के गले में डाल दिया और हाथों में सुवर्ण के सुन्दर कड़े भी पहना दिये कीमती और सुन्दर रत्नमयी आभूषणों को पहने कुमार के सौन्दर्य का वर्णन कौन कर सकता है । गले में गजमोतियन की माला, खासा मलमल का कुर्ता और दुसाला ओढ़े सहज ही सुन्दर कुमार गहनों आदि को पहने और भी अतिशय सुन्दर दिखने लगे । रानी आँखें फाड़-फाड़कर देखती रही । तृप्त न हो पाई । वह नारी धन्य है जिसका यह वर है । उसकी कामवेदना बढ़ती ही गई । दासी को बाहर भेजकर रानी ने कुमार को अपने पास बुलाया । कुमार धैर्यशाली थे । रानी ने कुमार से कहा–हे कुँवर ! वणिक् वृत्ति क्यों करते हो, आओ मुझे एक बार प्यार करो, तुम्हें देखते ही मेरी काम-वेदना बढ़ चुकी है । मुझे तुमने काम से ताड़ित किया है । तुमने मेरे मन को चुराया है । मुझे अपनी प्रिया बनाओ, मैं इस राजा को अपने मायाजाल से देशनिकाला दे तुम्हें राजपद पर आसीन करूँगी । जो चाहो दूँगी । नीतिकार लिखते हैं–

विषयों में आसक्त जीव के गुण सब ही नश जाते हैं ।
विवेक, मनुजता जातियता का भेद नहीं कर पाते हैं ।।
हो निर्लज्ज कपट वच बोलें नेक नहीं भय खाते हैं ।
पापी ढोंगी पाप करें, सिर औरों के कटवाते हैं ।।

रानी की बातें सुनते ही कुमार का शरीर थर-थर काँपने लगा । शील गया तो प्राण ही गये । जग में भारी अपयश होगा । क्या करूँ ? विपत्ति में धैर्य नहीं खोना है । उसी समय मनोरमा उसकी आँखों के सामने ही मानो खड़ी कह रही है "पतिदेव ! स्त्रियाँ स्वभाव से चंचल होती हैं उनका विश्वास कभी मत करना ।" सुखानन्द कुमार को पत्नी के वचनों का स्मरण हो आया–"शील प्रतिज्ञा" । उसने कहा–आप महारानी हैं । राजा की स्त्री, गुरु की स्त्री, बड़ी स्त्रियाँ माता के समान हुआ करती हैं तथा जैसे माता अपने पुत्र को गहने आदि पहनाती हैं वैसे ही आपने बड़े वात्सल्य से मुझे हार व कड़े पहनाये अतः आप मेरी ममतामयी माता के

समान हैं । इतना सुनते ही रानी को तो मानो करण्ट ही लगा हो, मुख नीचा कर लज्जित हो, पछताने लगी । उसके पास अब कोई उत्तर ही नहीं था । माता कहकर कुमार तो डेरे पर चले गये ।

आगे त्रिया चरित्र देखिये–

"त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं,
दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।

रानी ने त्रिया चरित्र रच डाला । वादीभिसिंह आचार्य ने कुलक्षिणी नारियों को फूहड़ मूर्खा की उपाधि दी है ।

नारी में गुण तीन हैं, "औगुण भरे हजार" ।
पुत्र जने सरस रचे करे मंगलाचार ।।

रानी ने कपट रूप धारण कर कोपभवन का आश्रय लिये । सारे आभूषण उतार दिये । क्रोधाग्नि से पीड़ित वह भंड वचन बोलने लगी । कपड़े चीर फाड़े, सुन्दर गजमुक्ता हार निकाल फेके, मोती के गजरे तोड़ डाले । सब आभूषण तोड़-मरोड़ दिये । शरीर को नखों से विदीर्ण कर दिया । ऐसी वह दुश्चरित्रा राजी त्रिया चरित्र को करती हुई भयानक रूप को प्राप्त हुई । रानी ने दरबार में फरियाद भेजी । समाचार सुनते ही राजा कोपभवन में पहुँचे–प्रिये ! तुम्हारी यह दशा किस दुष्ट पापी ने की है ? रानी बोली–राजन् ! आपके राज्य में सुरक्षा ही नहीं है । देखिये वह सेठ कुमार आया था, उसे मैंने बड़े वात्सल्य से रनिवास में बुलाया था । माँ की ममता से मैंने तो उसके गले में गजमोतियन का हार पहनाया पर उस दुष्ट ने तो मेरा सब कुछ लूट ही लिया । मैं शील धुरन्धर नारी वह मदमाता आदमी ठहरा । देखिये उस पापी ने ही मुझे बेहाल कर डाला । पापिनी ढोंग करती हुई अपशब्दों का प्रयोग करने लगी । हे राजन् । उसने मुझसे ऐसे अभद्र वचन कहे हैं जो वचनों से नहीं कहे जा सकते । वह कामान्ध इधर-उधर डोलता फिरता है, उसमें ज्ञान तो लेश–मात्र भी नहीं है । प्रिया के ये वचन सुन राजा तो कोप से भभक उठा । जैसे अग्नि में घी डालने से वह भभक उठती है वैसे ही भूपति भी क्रोध से लाल-लाल हो उठा ।

"नटायन्ते हि भूभुजः" राजाओं की वृत्ति नट के समान होती है। राजा ने शीघ्र ही किंकरों को बुलवाकर उनसे कहा–कुमार को डेरे से बुलाकर लाओ और डेरे पर मुसक चढ़वाओ। दुष्ट, पापी, नीच को शीघ्र ही शूली पर चढ़ाकर उसका सारा धन लूट लो। दिखता कितना भोला विनयशील है। पाखंडी, मायाजाल रचकर चला गया।

जो राजा के मन, प्रजा के मन और स्वयं के मन की ऐसे तीन मन की, बातों को जानता है उसे मन्त्री कहते हैं। मन्त्री जिस राज्य में बुद्धिमान होते हैं वहाँ प्रजा पर कभी अन्याय नहीं हो सकता। तदनुसार राजा के बुद्धिमान मन्त्री ने हाथ जोड़कर कहा राजन्! मुझ गरीब निवाज की वाणी भी सुन लीजिये। आप न्यायवन्त राजा हैं, बिना विचारे कोई भी कार्य करना ठीक नहीं है–

बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होता हँसाय।।

राजन्! पहली बात तो वह वैश्य है, दूसरे वह सेठ कुँवर है, लाखों-अरबों की सम्पत्ति उसके साथ है, परदेश से आया है, पाँच सौ शूर उसके साथ हैं, बड़ा भारी अधिकारी है, यह ऐसा काम उससे होना नहीं है ऐसा आप निश्चय कर लीजिये। आप बिना सोचे ऐसा गलत न्याय मत कर देना। आपके हाथ कुछ आना नहीं है वृथा ही लोक में अपयश फैलेगा। धैर्य से काम कीजिये, न्याय में आकुलता ठीक नहीं। स्त्री जाति अति चंचल होती है, उसका विश्वास करना ठीक नहीं, इसलिये राजन्। न्याय के बिना कुछ भी करना ठीक नहीं है। मंत्री के संतोषप्रद वचन सुनकर भूपति अति संतोष को प्राप्त हुआ। सत्य ही है, ज्ञानी स्वयं की भी रक्षा करते हैं और दूसरों की भी रक्षा करते हैं। जगत् में वे ही लोग धन्य हैं जो न्याय में आकुलता न कर हर कार्य सोच-विचारकर करते हैं।

राजा ने कहा–मंत्रीवर! निर्णय कैसे किया जावे। मंत्री ने कहा–राजन्? उस कुमार को बुलाया जाय जो और सारी वार्ता शान्ति से पूछिये। कुमार गुणवान हैं, गंभीर है अभी सत्य का

निर्णय हो जायेगा । किंकर को भेजकर कुमार बुलवाया जावे ।

किंकर डेरा पर जाकर कुमार से बोले–कुमार, आपको राजा ने याद किया है आप शीघ्र ही राजदरबार में हाजिर हो जाइये । बात सुनते ही चतुर कुमार समझ गये, रानी ने जरूर कोई विडम्बना की है, अब तो लक्ष्मी भी गई और प्राण भी गये । जग में अपयश फैलेगा यह अलग ही है । शरीर काँपने लगा, मुख मलीन हो गया । स्वामी की यह स्थिति देख सेवकों ने कहा–स्वामी ! एकाएक रंग में भंग कैसे हुआ । कुँवर, आप इतने चिंतित क्यों हैं । बहुत दिन हुए हम देख रहे हैं । आपका यह रूप कैसे हुआ, क्या संकट है शीघ्र बताइये । कुँवर बोले–आप लोग अब वैजयन्ती की ओर रवाना हो जाइये । मैं अपने पर आने वाली विपत्ति का सामना करूँगा ।

सेवक-बोले–स्वामी पर कष्ट आवे उस समय जो कोई उसको छोड़कर जावे तो उससे बढ़कर हीन नर इस पृथ्वी पर और कौन होगा ? उसकी माँ को ही धिक्कार है, वह "नमक-हराम" है, उसे श्वान से भी गया बीता नर जानो । इसलिये हे कुँवर ! सुन लीजिये मन में तनिक भी चिन्ता न करें, हम पाँच सौ शूर आपके साथ हैं, तब तक आपको तनिक भी आँच नहीं आने देंगे । जब हम पाँच सौ शूर मर जावेंगे तब हमारे वश की बात न रहेगी । चलिये राजा के दरबार में । पाँच सौ शूर तीर-कमान चढ़ा आपस में विचार-विमर्श करते हुए सब चल दिये, आपस में कह रहे थे स्वामी-रक्षा का समय आज जीवन में प्रथम बार आया है, इसमें पीछे नहीं रहना है, जरा भी कुछ स्वामी के विरुद्ध हुआ तो ढील नहीं करना है ।

जैसे गगन मध्य चन्द्रमा सुशोभित होता है वैसे शूरों में सुखानन्द अति शोभा को प्राप्त हो रहे थे । कुमार सेवकों के साथ राज-दरबार में पहुँचे । कुमार को देखते ही राजा हर्षित हुए, दोनों में आपस में अभिवादन हुआ । वे मन्त्री धन्य हैं जिन्होंने राजा को समझाकर रखा अन्यथा राजा के हाथ तो कुछ नहीं आता और जग में अपयश भी होता । भूपति ने कुमार को आदर के साथ बैठने के

लिये योग्य स्थान दिया। पाँच सौ शूर वहाँ ऐसे बैठे थे मानों सिंह क्रोधित हो बैठे हैं।

राजा ने कहा–रानी के महल में गये थे। कुमार ने कहा–जी हाँ, मुझे दासी द्वारा बुलाया गया था। मैं आपकी आज्ञा लेकर गया था। राजा–वहाँ क्या घटना घटी, स्पष्ट बताइये।

शूरों ने कहा–स्वामी ! डरिये नहीं, ज्यूँ की त्यूँ सारी बात कह दीजिये। चिन्ता की कोई बात नहीं। "साँच को आँच कैसी"। किया नहीं तो डर किसका।

कुँवर बोले–राजन् ! सुनिये, रानी ने मुझे रनिवास में बुलवाया। मैंने उन्हें राजपत्नी समझ माँ माना और गजमोती का हार भेंट दिया। उन्होंने उस हार को मुझे पहना दिया। गले में पहने कुमार ने वह हार राजदरबार में उपस्थित राजा व प्रजाजन को दिखाया। पश्चात् उसने जो अश्लील, गंदी बातें मुझे कहीं वे मैं अपने मुख से कहने में असमर्थ हूँ। व्यभिचार सम्बन्धी बातें मुख से निकालते हुए भी मुझे आकुलता होती है, लज्जा आती है। मैंने कहा–आप राजपत्नी होने से मातृवत् हैं आप मेरी माता हैं। माता शब्द का उच्चारण करते हुए अपने डेरे पर चला गया। अब उसने ऐसी विडम्बना रची है तो मैं क्या कर सकता हूँ।

राजा ने आभूषण आदि देखकर विचार किया यह कुँवर तो निर्दोष ही है। यह दोष तो सारा रानी का ही है। त्रिया जाति अति चंचल होती है, इसका विश्वास करना योग्य नहीं, अनेक चरित्र रचाती है, स्त्रियों का पार कोई नहीं पा सका। अब इसे क्या दण्ड दूँ। आखिर नारी अबला है, इसे मारकर पाप करना भी ठीक नहीं है। राजा ने उसके आभूषण, गहने आदि सभी छीन लिये। फटे पुराने कपड़ों में उसे रनिवास से निकाल देश से भी भगा दिया।

शील और कुशील का फल प्रत्यक्ष देखिये–राजा ने कुमार की सहायता की और प्रिय लगने वाली रानी को भी देशनिकाला दे दिया। इसलिये महानुभावों ! शील जगत् में सार है इसका पालन कर नरभव में यश प्राप्त करें।

तभी भूपति ने बहुत से रत्नमयी आभूषणों से कुँवर का सम्मान किया और कहा—कुँवर ! मेरी एक सुशील, गुणवती सुता है, उससे विवाह करो, हमारा—तुम्हारा प्रेम सदा बना रहेगा । तब कुमार ने कहा—हे महाराज ! हे राजन् ! सुनिये, मैंने रानी को माता कहा है अत: यह तो मेरी बहन हुई अत: बहन से विवाह करना उचित नहीं समझता, ऐसा अयोग्य कार्य मुझे शोभा नहीं देता । कुँवर की निर्मल सुशील बुद्धि देख राजा बोले—

"धन्या कुँवर त्वया माता, धन्या कुँवर त्वया पिता ।
धन्या कुँवर त्वया वंशज, परदार न पश्यति ।।

हे कुँवर, तुम्हें धन्य है, तुम्हारे माता-पिता वंश को धन्य है, वह घर भी धन्य है जहाँ तुमने जन्म लिया । पश्चात् राजा ने अनेक प्रकार से कुमार को सम्मानित कर डेरे पर पहुँचाया ।

अब तो कुँवर ने पाँच सौ शूरों को आदेश दे दिया—राजाओं की बुद्धि नटवत् होती है अत: देर मत करिये, सारे जहाज भरा लीजिये, क्षणिक भी देर करना ठीक नहीं पल भर में पता नहीं क्या हो जावे ।

पाँच सौ शूरों के साथ, रत्नों, आदि से भरे जहाज ले कुमार णमोकार मंत्र का जापकर अपने नगर की ओर चल दिये । चलते-चलते सभी उसी अरण्य में जा पहुँचे जहाँ शीलवती सुन्दरी मनोरमा का सारथी उसे अकेली छोड़कर चला गया था । इसी अरण्य में कुमार के दलबल के भोजन की व्यवस्था रखी गई । भोजन तैयार हुआ । कुँवर भोजन के लिये बैठने ही वाले थे कि "वैजयन्ती नगरी का एक अनुभववृद्ध व्यक्ति उधर से आ निकला । जंगल में यह मंगल कैसे, देखने के लिये वह कुछ क्षण रुका । कुमार ने उसे दूर से ही पहचान लिया । किंकर से कहकर उसे अपने पास बुलाया । कुँवर का हुक्म पाकर वे उसे उसके समीप ले आये । कुँवर ने उस मनुष्य को जल-पान करने के लिये आग्रह किया ।

कुँवर ने उससे कहा—नगरी का, राजा का क्षेम कुशल कहिये, प्रजा व देश की क्षेम कुशलता कहिये । वह मनुष्य बोला—नगरी में राजा, प्रजा सभी की कुशलता है । तब कुँवर ने कहा—हमारे घर की

कुशलता कहिये, इतना सुनना था कि उस मनुष्य के नेत्र अश्रुओं से छलछला उठे। कुमार ने कहा—तुम्हारे नेत्रों में नीर क्यों है, बोलते क्यों नहीं, जो भी हो। निर्भय होकर स्पष्ट कहो।

तब वह मनुष्य कहने लगा—कुँवर ध्यान देकर सुनिये—नगरी में आपके घर में तो वज्रपात ही गिरा है। क्या हुआ ? किसी ने बहूरानी मनोरमा सती की झूठी चुगली सेठानी के कानों पहुँचाई है। सेठ-सेठानी ने शील-धुरन्धर तुम्हारी तिया को घर से निकाल दिया है। इसी अरण्य में, इसी स्थान पर सारथी उसे छोड़कर गया था। फिर पता नहीं वह शीलवन्ती कहाँ गई, कौन उसे ले गया, जीवित भी है या नहीं ?

इतना सुनते ही कुमार तो तुरंत ही पछाड़ खाकर गिर पड़े। अचेत हुआ कुँवर तो सुध-बुध ही भूल गया। सभी शूरवीर समीप आये, शीतल चन्दन के छींटें डाले गये, तभी कुमार कुछ सचेत हुए। शूरों ने कुमार को बहुत कुछ समझाया—कुमार उठो, घर चलो यहाँ मन में कुछ भी चिन्ता न करो। माता-पिता से पूरी जानकारी प्राप्त करें, सुनते ही विह्वल होना भी ठीक नहीं। स्वामी ! होनी तो हो ही गई, होनी कोई रोक भी कैसे सकता है ? अनहोनी तो कभी होती ही नहीं। आपकी प्रिया ! आपका इन्तजार करती हुई, कहीं छिपकर बैठी होगी, हम उसका पूर्ण पता करेंगे।

"धीरज, धरम, मित्र अरु नारी। आपत काल परिखी अहिचारी"

कुँवर बोले—मेरी कोमलांगी त्रिया, धूप की एक किरण देखते ही जो कुम्हला जाती है, ऐसे भयानक अरण्य में सारथी ने उसे अकेली छोड़ा है। ऐसी स्थिति में उसके जीवित रहने की क्या आशा की जा सकती है ? या तो कोई शियाल, सिंह उसे खा गया, या उसे कोई चुरा ले गया। मुझे उसके जीवन का कोई भरोसा नहीं, उस अकेली ने अपने प्राण भी त्याग दिये हों तो क्या भरोसा ? कहते-कहते कुँवर रुदन करने लगे। अब मैं घर किसके लिये जाऊँ। मैंने इतना परिश्रम कर इतना कमाया वह सब किसे जाकर दिखाऊँ। सारी सम्पत्ति इकट्ठा कर कुँवर बोले—यह सब सम्पत्ति पिता को सौंप दीजिये, आप सब लोग घर जाइये और पिता को

सारा हाल कह सुनाइये । आगे कुँवर बोले—शूरों ! सुन लीजिये—अब उस त्रिया के लिये फकीर का भेष बनाकर रहूँगा जब वह मिलेगी तब ही मैं पिताजी से आकर मिलूँगा । यदि नहीं मिली तो हे शूरों ! मैं फकीर के भेष में रहकर जिन्दगी पूरी करूँगा । इतना कहकर कुमार जोरों से रुदन करने लगे । कर्मों की गति विचित्र है, सुख में यह दुख कहाँ से आ गया । अब तो भाग्य में जो लिखा है वही होगा । कर्मों का लेख मिटाये नहीं मिटता—

"कर्मन की गति न्यारी विधना टारी नाही टरै"

शूरों ने जब समझ लिया कि कुँवर अब घर नहीं जायेंगे तो सारी सम्पत्ति समेट वे दुखी हो वहाँ से चल दिये । चलते-चलते वैजयन्ती नगरी जा पहुँचे । जाकर सेठ महीपाल से कहा—यह संपत्ति आपके कुँवर सुखानन्द ने कमाकर भेजी है, एक तो शीलवन्ती वधू को निकाल दिया और अब पुत्र भी हाथ से निकल गया । आज से अब हम भी आपके किंकर नहीं रहे, अब हम तो आपका मुख भी देखने वाले नहीं हैं । इतना सुनते ही सेठ जोर-जोर से मुँह फाड़-फाड़कर रोने लगा । हा ! बेटा ! तुम कहाँ हो, तुम्हारे बिना मेरे तो प्राण सूख रहे हैं, चौबीस घंटे मैं तुम्हारी याद में जीवित हूँ, मुझपर तो दया करो । ओ सेवकों ! जरा इधर तो आओ ! बताओ मेरा लाल कहाँ है । उससे कहो—एक बार घर आओ । तुम्हारे बिना माता-पिता प्राण छोड़ने को बैठे हैं । हा पुत्र ! मुझ पापी को क्षमा करो । मैंने स्त्री के कहने में आकर कुकार्य किया उसी का यह दुष्फल है कि आज मैं पुत्र से भी गया । बहू भी गई और पुत्र भी गया । अब किसके लिये जीना । सारे लोक में अपयश फैलेगा । सभी किंकर चले गये । कोई मेरा मुख भी देखना पसन्द नहीं करता, सेठ रो-रोकर मन ही मन परेशान हैं ।

इधर कुमार फकीर का भेष बना भयानक अटवी में घूम रहे हैं । कुंडल-कंकण सब उतार फेके हैं, शरीर पर भभूति रमा, हाथ में चिपटा ले, तन की सुध-बुध भी खो चुके हैं । हा मनोरमा ! हा त्रिया कहाँ हो, तुम्हारे साथ यह अन्याय किसने किया मुझे एक बार देखो, मेरी क्या दशा हो गई है, कहीं छिपी हो, नाराज हो तो प्रसन्न

हो शीघ्र दर्श दो । प्रिये ! शायद मेरे आने में देरी होने से नाराज हो गई हो तो शीघ्र क्षमा करो । मोह की लीला देखिये-

"मोह बुरा संसार में, सुन लीजे नर-नार ।
ज्ञानवन्त वह सेठ सुत, भयो फकीर वनखंड ।।"

जंगल में भ्रमण करते हुए वह वृक्षों को पूछता है—हे वृक्षों तुमने मेरी मृगनयनी प्रिया देखी है क्या ? सिंह, हाथी, सियार क्रूर जन्तुओं से पूछता है क्या तुमने मेरी प्रिया देखी है ? चारों ओर पूछता, वह कुमार चलते-चलते राजगृह नगरी की ओर बढ़ा । एक कुँए पर कुछ पनिहारिन आपस में चर्चाएँ कर रही थीं, उनमें से एक पनिहारिन बोली—एक रहस्य की बात मैं तुम्हें सुनाती हूँ सुनो—महाराजा का कुँवर कामविलासी है । यह एक नारी को हरकर लाया था । वह नारी शीलवती, शीलधुरन्धर नारी थी, उसके समान शीलवता नारी पृथ्वी पर देखने को नहीं मिलेगी । कुमार ने उसके साथ बलात्कार करना चाहा परन्तु उस शीलवंती की दृढ़ता के प्रभाव से देव ने आकर उसकी सहायता की और उस पापी को इतना पीटा कि जान बचाना मुश्किल हो गया, उसका हाल बेहाल हो गया । उस पापी ने फिर उस अबला को उसी अरण्य में जहाँ से लाया था, छोड़ दिया ।

एक दूसरी सखी ने कहा—सखी, मैंने यह भी सुना है कि बनारस नगरी में उस स्त्री का मामा रहता है । वह किसी काम से उस अरण्य की ओर गया था । अपनी भाञ्जी को वह ले गया है । अभी वह अपने माया के घर में रह रही है । सच है, मेरी सखियों ! मेरी बात में तनिक भी सन्देह मत करना, अभी वह नार सकुशल है ।

फकीर (कुमार सुखानन्द) कुँए के पास बैठा-बैठा स्त्रियों की चर्चा बड़े ध्यान से सुन रहा था । उसे बड़ा हर्ष हुआ, उसने यह निश्चय कर लिया कि यह सारी चर्चा मेरी प्रिया की ही है । बस अब क्या था, पथिकों से बनारस नगरी का मार्ग पूछा और उसी ओर निकल पड़ा । चलते-चलते वह बनारस पहुँच गया और सेठ धनदत्त के द्वार खटखटाये । फकीर ने द्वार खटखटाये देखकर सेठ बोले—

क्या बात है, कुछ भिक्षा चाहिये तो रुकिये अभी लाता हूँ। फकीर ने कहा—भिक्षा की बात नहीं। सेठ ! तुम मेरी स्त्री को लेकर आये हो मुझे उससे मिलना है। सेठ ने कहा-आप फकीर होकर ऐसी उटपटाँग बातें कैसे करते हो। फकीर बोला—मुझे परेशान मत करो, एक बार उससे मिलाकर मुझे सुखी करो। सेठ ने कहा—मैं आपको पहचानता नहीं हूँ, यदि शीलवंत नारी अपने कन्त को पहचान लेगी तो मैं आपको उससे जरूर मिलवाकर सुखी करूँगा, आपका पूर्ण सम्मान करूँगा। सुन्दरी मनोरमा को जब यह खबर मिली तो वह दौड़ी-दौड़ी शीघ्र ही नीचे उतरकर आई, मन ही मन हँसी, जमकर हँसी, मानो उसे सर्वस्व ही मिल गया हो। वह ऊपर जाकर झरोखे में बैठ गई और एकदृष्टि से पति को निहारती रही। सखी से बोली—सखी ! बात सुनो, निश्चय ही ये मेरे कन्त हैं, मेरे भर्ता हैं। मेरे वियोग में ही इन्होंने यह फकीर का भेष बना, शरीर पर भभूति लगाई है। मर्यादा की रक्षा करने वाली मनोरमा में अधीरपना नहीं था। उसने अपने मामा से कहा—मामाजी ! ये फकीर नहीं, मेरे पतिदेव ही हैं। मेरे वियोग में ही इनकी यह दशा हुई है। इनका यथोचित सम्मान करिये, ससम्मान इन्हें भीतर लाइये इसमें जरा भी शंका मत कीजिये।

इतनी बात सुनते ही सेठ का भ्रम दूर हो गया। मामा आनन्दित हो उठे। ससम्मान गृहप्रवेश करा गले से लगाया। सेवकों को बुलाकर उन्हें स्नान कराकर हाथ में कड़े, कान में कुण्डल, गले में गज मोतियन का हार, खासा मलमल का कुर्ता और दुशाला आदि पहनाये। कुमार ने बहुत दिनों के पश्चात् आज सर्वप्रथम जिनदर्शन किये, पश्चात् षट्रसमिश्रित भोजन कर विश्राम किया। बहुत सम्मान पाया, दोनों ने अपने सुख-दुख की तो चर्चा की इसी में दिन बीता, रात्रि भी बीत रही थी कि सुन्दरी से कुमार बोले—प्रिये ! अब पिता के घर चलकर उनको भी सान्त्वना देनी है। सुन्दरी बोली—वैजयन्ती में मेरे ऊपर जो कलंक लगा है, उसका अब आपको निवारण करना होगा। जब तक मेरा न्याय नहीं होता तब तक मेरे पास आप कोई मत रहो। स्वामी ! विचार करिये

मुझे शील-दोष लगा है ।

कुमार बोले—प्रिये ! मुझे यह विश्वास है कि तुम निर्दोष हो, तुम्हारे शील में कोई दोष नहीं है । सुन्दरी बोली—पतिदेव ! आपको तो मुझ पर तनिक भी सन्देह नहीं है पर दुनिया इस बात को मानने वाली नहीं है । इसलिए हे स्वामी ! मेरे महल में पैर मत रखिये, जब तक मेरा न्याय नहीं होगा तब तक मेरे महल में कोई भी पैर न रखे । इतना सुनते ही कुमार प्रिया से दूर हट गये । तुम जैसी शीलवन्ती नारियों को धन्य है, शीलवन्ती नारियों को धन्य है, जिनने शील की महिमा जग में प्रगटाई । जिनके शील की चर्चा देवों में भी हो रही है, ऐसी मेरी प्रिया ! धन्य है । जो ऐसी नारियों का यश गाता है उनका यश जगत् में फैलता है । कुमार बनारस नगरी में रहने लगे । जिनाभिषेक, जिनपूजा, आहारदान आदि षट्कार्यों में समय बिताने लगे । आगे की स्थिति जानने को पाठक उत्सुक हैं, अतः आइये आगे का हाल कहें—वैजयन्ती नगरी में सुखानन्द के माता-पिता पर क्या गुजरी, आइये देखिये—

एक दिन पदमसेन राजा सभा लगाकर बैठे थे कि एक मन्त्री ने आकर कहा—राजन् ! सेठपुत्र सुखानन्द कुमार जो परदेश गया था, वर्षों बीत गये अभी तक आये नहीं । मन्त्री ने हाथ जोड़कर कहा—राजन्, क्या आपको अभी इस बात की खबर नहीं है । सुनिये राजन् ! सुखानन्द कुमार की शीलधुरन्धर नारी को सेठ ने घर से निकाल दिया, वर्षों बीत गये उसके भी जीवन-मरण का कोई पता नहीं है । सुखानन्द ने खबर पाते ही फकीर का भेष बना लिया है । अब वह फकीर का भेष लिये जंगलों में घूमता-फिरता है । जीवन-मरण की कुछ खबर ही नहीं है ।

इतना सुनते ही सेठ की धृष्टता से कुपित हो राजा ने सेठ को बुलवाया । राजा का बुलावा सुनते ही सेठ के मानो प्राण-पखेरू ही उड़ गये । गिरते-पड़ते दुख का मारा सेठ दरबार में पहुँचा । देखते ही राजा ने सेठ से कहा—सेठ ! क्या इस देश के राजा तुम ही बन गये हो । सारा न्याय तुमने ही कर लिया ? किससे पूछकर पुत्रवधू को जंगल में छुड़वाया ? देश में हमारी कीमत तुम्हारे पास क्या

रही ? सेठ नीचा मुँह लटकाए चुपचाप खड़े रहे, बोलते भी क्या ?

सेठ—राजन्, क्षमा कीजिये, मैंने अपनी सेठानी के कहने में आकर अनर्थ कर डाला । राजा—पता नहीं, क्या जाने, कौन सी स्थिति में तुमने कैसे क्या निर्णय ले डाले । समझ में नहीं आता बुद्धि सठिया गई, क्या हुआ ? मुझे सुनकर अपार दुख हो रहा है । तुमने शीलवती पर कलंक कैसे लगाया, न्याय मेरे पास तक तो आना था । बन गये आप ही राजा, अन्याय कर डाला, मेरे राज्य में इतना बड़ा अन्याय ! सेठ या तो पूरा भेद बताओ नहीं तो सूली पर चढ़वा दूँगा, समझ क्या रखा है ?

सेठ बोले—राजन् ! इसका भेद मैं कुछ नहीं जानता, भेद तो आपके कुमार की दूती ही बतायेगी । वही सारा रहस्य जानती है । तभी सिंहासन पर बैठे राजा ने तुरंत ही दूती को बुला भेजा । क्रोध से राजा बोले—दूती ! सेठ ने मनोरमा को जंगल में छुड़वा दिया । इस संबंध में जैसी बात हुई है, हमने सुनी है, तुम उस बात को जैसी की तैसी शीघ्र बताओ नहीं तो शूली पर चढ़वा दूँगा ।

दूती काँपने लगी, उसने सोचा, राजा ने सारी बातें सुन ली हैं, सारा घटनाक्रम इनके ज्ञान में आ चुका है अब यही मैं कुछ झूठ बोलती हूँ तो राजा मुझे शूली पर चढ़ाये बिना नहीं रहेगा । अत: उसने राजा से कहा—हे राजन् ! ये सारे कर्म तुम्हारे राजकुमार ने ही मुझसे कराये हैं, उसने सारा वृत्तान्त ज्यों का त्यों कह सुनाया । न्यायप्रिय राजा बोले—मेरे राज्य में जब भी कोई ऐसा कुकर्म किया जायेगा तो न्याय तो राजा पर ही आयेगा । मेरे राज्य में प्रजा का कोई भी व्यक्ति दुष्कर्म, अशुभ कर्म करेगा तो न्याय तो मुझे ही करना होगा । सारा न्याय सेठ ने कर दिया, अन्याय कर दिया, लोग क्या कहेंगे कि राजा ही ऐसे कर्म कराते हैं, जब राजा ही ऐसा कर्म करायेगा तो धर्म किस प्रकार चलेगा । इसलिये पापी तो मेरा अपना राजकुमार ही है । अब तो रक्षक ही भक्षक हो गया । आज से अब यह पापी मेरा पुत्र नहीं रहा, न्याय अब करूँगा । "दूध का दूध पानी का पानी" सच्चा न्याय तभी होगा ।

राजा ने मंत्री को हुक्म दिया—कुमार को ही शूली पर चढ़ना

चाहिये । मंत्रीवर ! ढील न कीजिये, शीघ्र ही कुमार को मौत के घाट उतारिये । तब मंत्री बोले—राजन्, इतना कठोर निर्णय नहीं लीजिये । आखिर तो वह आपका पुत्र ही है, भूल-चूक को माफ कर दीजिये । तभी राजा बोले—ऐसा दुष्ट पापी पुत्र मुझे नहीं चाहिये, हे मन्त्री, इसे अभी शूली चढ़ाओ । मंत्री ने कहा—स्वामी ! प्राणरक्षा कीजिये । बार-बार ऐसा कहने पर राजा बोले—मंत्री ! नहीं मानते हो तो तुम्हारी बात मैं मानता हूँ इसे प्राणदण्ड मत दो "पर इसे इस देश से निकाल दो जिससे इसका मुख कोई देखने ना पाये ।

भूपति की आज्ञा से मंत्री ने राजकुमार को देशनिकाला दे दिया। धन्य हैं ऐसे न्यायवन्त राजा जब तक पृथ्वी पर रहेंगे, धर्म सुरक्षित रहेगा । जिसने न्याय के लिये ढील न कर पुत्र तक को निकाल दिया, ऐसे ही नर-रत्नों का यश लोक में फैलता है ।

राजा ने सेठ महीपाल से कहा—सेठजी अब ध्यान देकर सुन लीजिये पुत्र की खोज करो । परदेश में जाकर पुत्र ढूँढो, नहीं तो न्याय करने में देर लगने वाली नहीं है, मैंने पुत्र तक को न्याययुक्त हो निकाल दिया तो अन्य की बात ही क्या ? शीघ्रता नहीं की तो शूली पर चढ़वा दूँगा । इतना सुनते ही सेठ अपने घर की तरफ बढ़ चले । सेठ घर पहुँचे अपनी त्रिया से बोले—हे दुष्टा, पापिनी, तेरे कहने में आकर मैंने बहू को घर से निकाला । बहू गई, बेटा भी गया, लोक में निन्दा का पात्र बना यह सब कुछ मेरा हृदय जानता है मैंने कैसे सहन किया । अब तो जान पर ही बाजी आ गई है, राजा तो मारने पर उतारू हो गया है । रोते हुए, सिर पीटते हुए सेठ पुत्र की खोज में घर से निकल पड़े ।

बड़े कष्ट से दुःख उठाते हुए नगर में, गाँवों में खोजते-खोजते लम्बा समय बीत गया । चलते-चलते बनारस नगर में सेठ धनदत्त के घर जा पहुँचे । महीपाल सेठ ने धनदत्त से कहा—मैंने सुना है मेरा पुत्र आपके घर में है । आप शीघ्र ही मुझे अपने पुत्र से मिला दीजिये मैं आपका उपकार युगों-युगों तक गाता रहूँगा । मुझे शीघ्र ही उसके दर्शन कराओ जिससे सुख प्राप्त करूँ । इतनी बात सुनते ही धनदत्त ने सेठ महीपाल को ससम्मान घर में प्रवेश कराया ।

धनदत्त ने सुखानन्द के पास समाचार भेजा—आपके पिताश्री पधारे हैं, वे आपके बिना बहुत दुखी हैं, एक बार उनसे मिलकर, उन्हें शान्ति-सुख प्रदान करो । कुमार ने आक्रोशभरे वचनों से कहा—पिताजी ! अपने घर जैसे आये हैं, वैसे ही लौट जावें, मैं जीते जी तो उनका मुख देखूँगा ही नहीं । ससुर के प्रति ऐसे कठोर वचन पतिदेव के सुनकर कुलवती शीलधुरन्धर सुन्दरी बोली—पतिदेव, ऐसे कटु वचन पिताश्री को कहना ठीक नहीं है । जिन माता-पिता से आप पैदा हुए उनका कर्ज हम जन्म-जन्म में भी नहीं चुका सकते । उनके लिये ऐसा बोलने वाले आपके जीवन को धिक्कार । सब कर्जे चुकाये जा सकते हैं परन्तु माता-पिता के उपकार को, उनके कर्जे को चुकाया नहीं जा सकता । हमने जो पूर्वभवों में कर्म किये हैं, उनका फल भोग रहे हैं । जैसे अपने पुण्य का फल भोगने के हम अधिकारी हैं वैसे ही अपने पूर्वकृत पाप का फल भी तो हम ही भोगेंगे । ऐसा तो नहीं कि पुण्य का फल हम भोगें, पाप का फल कोई दूसरा । इसलिये पतिदेव ! किसी को दोष मत दीजिये, किसी को भी कुछ मत कहिये और पिताश्री से सविनय नमस्कार कर मिलिये । उनके दुःख को, उनके कष्टों को दूरकर उन्हें सुख, शान्ति प्रदान कीजिये ।

गुणवन्ती कुलवन्ती नारी के वचनों को सुनते ही एकक्षण भी देरी न कर कुमार ने पिताश्री के चरणों में जाकर अपना शिर झुका दिया । पिता महीपाल ने पुत्र को कंठ लगाया दोनों के नयनों से ऐसे आनन्दाश्रु बरस पड़े मानो बादल ही बरस रहे हों । तब पिता ने पुत्र से कहा—बेटा ! मेरी सभी गलती, अपराध, भूलचूक क्षमा करो और अपने घर चलो । हे तात ! आप महापुरुष हैं, फिर भी मेरी बात सुनिये । "मैं वैजयन्ती नगरी में अब जीवनभर पैर नहीं रखूँगा । शीलवन्ती नारी पर ऐसा अत्याचार किया गया है जो मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा । सेठ—बेटा ! तुम्हारी माता कितनी दुखी है, सूख चुकी है उसकी ओर तो देखो । कुमार माँ के कहने में आकर ही तो यह सब हुआ है, यह तो ठीक है, वह शीलवन्ती शील के प्रभाव से देवों से रक्षित हुई । यदि मर जाती तो क्या होता । पिता—

बेटा ! तुम्हारी सब बातें ठीक हैं एक बार अपने घर तो चलो, मुझ पर भी तो कृपा करो । यदि तुम नहीं चले तो राजा मुझे प्राणदण्ड देगा ।

पुत्र—पिताजी ! मुझे इन सब बातों से कोई प्रयोजन नहीं, मैं वैजयन्ती नहीं जाऊँगा ।

पिता-पुत्र की इस प्रकार की वार्ता सुन मनोरमा बोली—पतिदेव ! वैजयन्ती नगरी में मुझे कलंक लगा है, इसलिये एक बार आप वहाँ चलकर मेरा न्याय कराइये, पश्चात् आप कहीं भी रहिये, चिन्ता नहीं । इतना सुनते ही कुमार ने जाने का निश्चय कर पिताजी को स्वीकृति प्रदान कर दी । तभी पुत्रवधू ने अपने कंत से कहा—पतिदेव ! पिताजी को अब शीघ्र ही भोजन कराइये । कुमार ने कहा—प्रिये ! शीघ्र भोजन की तैयारी करो, मैं अभी पिताजी को जिन-दर्शन कराके लाता हूँ । सुन्दरी बोली—पतिदेव ! जब तक मेरा न्याय नहीं होगा तब तक मेरे घर रसोई कैसी ? तब तक मैं किसी को जिमाऊँ कैसे ? यह सुन कुमार जिनालय पहुँचे और मंदिर से आकर षट्रसमय भोजन बनाने में प्रवीण पुत्र ने अपने हाथों भोजन पकाया, पिता-पुत्र ने बहुत प्रेम से भोजन किया, आज मानों सारे दुख क्षय को ही प्राप्त हो गये ।

मनोरमा व सुखानन्द ने मामा धनदत्त से बिदाई ली । मामा ने भाञ्जी मनोरमा को बहुत प्यार किया व कुमार को गहने रथ व पालकी आदि दे आनंदाश्रुओं से मंगल बिदाई दी । पिता–पुत्र रथ में सवार हुए तथा सुन्दरी शीलवती पालकी में बैठ गई । रथ व पालकी चल पड़ी, कुमार ने अपने नगर की ओर कूच किया । रात-दिवस चलते-चलते तीनों कुछ ही दिनों में अपने गन्तव्य वैजयन्ती नगरी में जा पहुँचे । तभी वीर नारी मनोरमा अपने पिया से बोली—पतिदेव ! जब तक मेरा न्याय नहीं होगा तब तक मैं घर में पैर नहीं धरूँगी । नगर में कहीं भी किसी भी, हवेली में रहूँगी पर घर में प्रवेश नहीं करूँगी । इस प्रकार सुन्दरी का अपने पतिदेव के साथ नगर में आगमन तो हो गया । आगे क्या हुआ—

चारों ओर नगर में खुशी का वातावरण छा गया । तोरणबंध

बाँधे गये। नर-नारी शीलवती को देखने के लिए आतुर खड़े हैं। नगर के राजा को समाचार प्राप्त हुए कि नगर सेठ महीपाल की पुत्रवधू नगर में तो आ चुकी है पर उसका कहना है कि जब तक मेरा न्याय नहीं होगा तब तक मैं घर नहीं जाऊँगी। ठीक है। अब तो संध्या हो चुकी, प्रातःकाल राज दरबार में इसका न्याय शीघ्र ही करूँगा। शील के प्रभाव से इन्द्र की सभा में मनोरमा के शील की चर्चा होने लगी—

प्रथम स्वर्ग में इन्द्र का दरबार लगा। स्वर्गलोक में मनोरमा के शील की चर्चा प्रारंभ हो गई। सौधर्म इन्द्र ने देवताओं को संबोधित करते हुए कहा—देवगण, ध्यान देकर सुनिये। मनोरमा सुन्दरी जिसकी पहले भी आप लोगों ने सहायता की थी वह आज अपने नगर वैजयन्ती में आ गई है। प्रातःकाल राजा उसका न्याय करेंगे। पता नहीं कौन सी परीक्षा उसे देनी पड़े अतः आप में से कोई मध्य लोक में जाकर ऐसा कार्य कीजिये जिससे शील की महिमा बढ़े। शीलवंती की रक्षा हो, धर्म की प्रभावना हो, नारी की विजय हो ऐसा यत्न कर दीजिये। इन्द्र की आज्ञा पाकर देवतागण तत्काल ही मध्यलोक को दौड़ पड़े। अर्द्धरात्रि शेष रही तब देव ने स्वर्ग से आकर सुन्दरी के शील का माहात्म्य बढ़ाने के लिये नगरी के बारह दरवाजे बन्द कर दिये। वज्र की कीलें कठोरता से लगाकर दरवाजे बन्द कर दिये। यक्षदेव उन दरवाजों पर चौकीदार बनकर बैठ गये।

प्रातःकाल होते ही नगर के नर-नारी प्रभु का नाम स्मरण कर उठे, अपने-अपने काम के लिये मार्ग में जाने के लिये तैयार हुए, द्वार नहीं खुले। नगर के द्वार क्यों नहीं खुल रहे हैं, किसने इन्हें बन्द किया आदि चर्चा का विषय बन गया। यह सभी समाचार राजा के पास पहुँचा। समाचार पाते राजा ने बड़े-बड़े सैकड़ों सरदार, मल्ल, योद्धा तथा चार हजार योद्धाओं को भी भेजा। सभी पच गये, सभी ने अपनी भरपूर शक्ति लगाई पर एक अंगुल भी द्वार इधर-उधर ना कर पाये। सभी मल्ल, वीर योद्धा हार मान गये। तभी राजा स्वयं चतुरंग सेना ले द्वार पर आये। सभी सेवकों ने मिलकर दरवाजों को खूब हिलाया किन्तु द्वार किंचित् भी हिलने नहीं

पाया । मदमाते हाथियों से द्वार पिलवाये, हाथियों के मस्तक फट गये पर द्वार नहीं खुले ।

राजा शोकाकुल हो विचारने लगे कौन से तीव्र पाप कर्म का उदय आया जो वज्र कपाट लगे । इतना प्रयत्न करने पर भी खुलते ही नहीं । राजा ने प्रतिज्ञा की—जब तक ये वज्रकपाट नहीं खुलेंगे तब तक अन्न-पानी का त्याग है, अन्य नर-नारियों ने भी अन्न-पानी का त्याग कर दिया । ऐसा संकट आया कि परदेशी यात्रीगणों के सारे मार्ग रुक गये, सबका अन्न-पानी छूट गया । अन्दर का व्यक्ति बाहर नहीं जा सकता, बाहर का व्यक्ति अन्दर नहीं आ सकता । चारों ओर नगर में हाहाकार मच गया । एक समय के लिये भी किसी को चैन नहीं । दिन बीत गया, दूसरे दिन की अर्द्धरात्रि शेष रही तभी राजा को नींद लगी । राजा और सभी दरबार के लोग सो गये ।

गहरी निद्रा में भूपति सो रहे थे । देव ने स्वप्न में आकर कहा—हे राजन् ! ध्यान देकर सुनिये । आप करोड़ों उपाय करिये पर ये वज्रकपाट ऐसे खुलने वाले नहीं हैं । जो शीलवती स्त्री, पतिव्रता नारी अपने पैर के अँगूठे से द्वार को छूएगी, उसके अँगूठे का स्पर्श होते ही क्षण मात्र में ये वज्रकपाट खुल जाएँगे । अन्यथा आप कोटी उपाय भी क्यों न करें, द्वार नहीं खुलेंगे ।

राजा तत्काल ही जागे । उन्होंने नगर में डोंडी पिटवाई, घोषणा करवाई कि "शीलवती पतिव्रता नारियाँ दरवाजे को अपने पैर के अँगूठे से छुएँ । उनके शील के प्रभाव से क्षण भर में ही दरवाजा खुलेगा ।"

घर-घर में स्त्रियाँ सोलह शृंगार कर, सुन्दर मूल्यवान वस्त्रों को पहने, गजमोतियों का हार पहने सज-धज कर तैयार हुईं, एक-दूसरे से बड़े अहंकार से कह रही थीं मैं दरवाजा खोलूँगी, मैं दरवाजा खोलूँगी, संसार में मुझसे अधिक शीलवान् और कौन हो सकता है । इत्यादि । लाखों स्त्रियाँ उमड़-घुमड़ कर फाटक के पास पहुँचीं । सैन्यदल के साथ भूपति स्वयं सारा हाल देख रहे हैं, सभी स्त्रियाँ पच-पचकर हार गईं परन्तु वज्रकपाट एक अंगुल भी हिला न सकीं ।

सबका गर्व चूर-चूर हो गया, मुँह लटकाती हुई अपने-अपने स्थान को जाती हुई वहाँ से दूर हटती गईं। राजा चिन्तातुर हो विचारने लगे, जितनी स्त्रियाँ नगर में थीं सभी आ गई हैं, अब क्या किया जाए ? रनिवास में जितनी स्त्रियाँ थीं वे घमण्ड में चूर हो बार-बार एक ही बात कह रही थीं—हमको बुलाया जाये तो, हमारे शील के प्रभाव से तो अँगूठा छूना तो दूर ही रहे, हमारे जाते ही दरवाजे खुल जाएँगे। राजा ने रनिवास की सभी रानियों को द्वार खोलने के लिये प्रेरणा की। परन्तु सभी का मानभंग हो गया, दरवाजा तो जरा भी नहीं हिला। तभी राजा ने मंत्री से कहा—मन्त्रीजी ! एक बात कहो। इस नगर में कोई स्त्री ऐसी तो नहीं शेष रही जो अभी तक दरवाजे खोलने नहीं आई ? यदि कोई होवे तो मुझे शीघ्र बताओ। मन्त्रीजी बोले—राजन्, नगर की जितनी स्त्रियाँ थीं वे सभी आ चुकी हैं। रहस्य की बात यह है कि सेठ महीपाल की पुत्रवधू के द्वारा ये द्वार खुलेंगे और तो कोई दूसरी स्त्री मुझे नजर ही नहीं आ रही है। यह सब ठाठ उसी का नजर आता है।

मन्त्री की वार्ता सुनते ही न्यायप्रिय, गुणों का पुजारी राजा नंगे ही पैरों उस मनोरमा सती के पास पहुँचे। राजा बहुत विनयपूर्वक शीलधुरन्धरा सती से बोले—हे वधू ! तुम शुद्ध शीलवन्ती नारी हो, निष्कलंक हो, अनुशासित व विनयवान हो। तुम्हारा सब ही पर समभाव है मेरे अनजाने में तुम्हें देशनिकाला दिया गया इस चूक को, इस भूल को हे देवी क्षमा करो। तुम्हारे ही शील का ठाठ चारों ओर गूँजने वाला है। हे पतिव्रते ! चलो नगर में बड़ा भारी संकट आ पड़ा है, उठो चलकर वज्रकपाट खोलो और नगरवासियों के समस्त कष्ट दूर करो।

सुन्दरी बोली—राजन् ! मुझ अबला की एक अर्जी सुन लीजिये—आपकी इस नगरी में बड़ी-बड़ी शीलवन्ती नारियाँ हैं जिन्होंने मुझे कलंकित किया है, उनसे ये द्वार नहीं खुल पाये तो मैं तो त्यक्ता हूँ मुझसे द्वार कैसे खुल सकते हैं। तभी राजा बोले—हे शीलवन्ते ! देवों का अतिशय है, तुम्हारे शील की चर्चा देव भी स्वर्गलोक में कर रहे हैं, यह सारा ठाठ तुम्हारे ही निमित्त देवों ने किया है। हम पापियों के सब पाप, सब दोष माफ करो और

नगरवासियों के कष्ट दूर कर शील का चमत्कार, महत्व प्रकट करो।

राजा के बहुत कहने पर सुन्दरी ने कहा—ठीक है राजन् ! आप मेरे पितातुल्य हैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । आप चलिये मैं आपके पीछे थोड़े ही समय में आती हूँ । इस प्रकार आनंदित हो राजा लौट गये । राजा के हृदय में आनन्द की लहर दौड़ पड़ी थी कि अब कुछ ही समय में न्याय स्वयं हो जायेगा । प्रजा का कष्ट भी शीघ्र दूर होगा ।

सुन्दरी ने शुद्ध छने हुए जल से स्नान किया । सुन्दर मूल्यवान परिधान धारण किये । भुजाओं में बाजूबन्द, हाथों में रत्नजड़ित मुन्दरि, गले में दो-तीन लड़ियों के गजमुक्ता के हार, कानों में सुन्दर कुण्डल, शीश पर शीर्षफूल लगा, मोतियों से माँग भर पैरों में नूपुर पहने, सोलह शृंगार कर सती मनोरमा रत्नमयी थाल में अष्ट द्रव्यों को सजाकर सर्वप्रथम जिनमन्दिर में गई । जिनालय में पहुँच मन-वच-काय से एकाग्रचित्त हो उसने जिनेन्द्रदेव की भक्तिपूर्वक पूजा की । पश्चात् वह त्रिलोकीनाथ के चरणों में खड़ी हो जिनभक्ति से प्रेरित अनुपम भक्ति रस में भींगकर प्रभु से प्रार्थना करने लगी—

हे करुणा के सागर जिनवर, तारण तरण महासुखकार ।
दीनदयाल अरज सुन मेरी, तुम बिन कौन करे उद्धार ।।
मात-पिता तुम ही प्रभो मेरे, तुम ही बांधव हो हितकार ।
मैं चरणों की दासी जिनवर, राखो आज हमारी लाज ।।

हे जिनदेव ! मैं आपके चरणों की दासी हूँ, मैंने बचपन से आज तक आपको ही माना है, आज मेरी लाज प्रभो आपके ही हाथ है । नगर के दरवाजे बन्द हैं, नगर की सारी स्त्रियाँ पच-पच कर हार चुकी हैं । हे नाथ ! भूपति ने मुझसे द्वार खोलने की जिद्द पकड़ी है, हे भगवन् ! मुझे तो एकमात्र आपका ही शरणा है । हे जिन ! मैं आपके ही भरोसे, आपके ही विश्वास पर दरवाजे पर पहुँचूँगी—

"मैंने तेरे ही भरोसे दीनानाथ भँवर में नैय्या डाल दई"

यदि दरवाजा नहीं खुला तो वहीं अपने प्राण त्याग दूँगी इसलिये हे नाथ, मेरी लाज रखिये । तारो या मारो, जीवन-डोरी

आपके साथ बाँधी है—

जिसने तुम संग प्रीति है जोड़ी, जग से नाता तोड़ दिया ।
उसने स्वर्ग सुखों को भोगा, शिव से नाता जोड़ लिया ।।

जिनेन्द्र चरणों में गवासन से बैठकर नमस्कार करती है । नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप, कायोत्सर्ग पूर्ण कर, पुनः प्रार्थना करती है—"प्रभो ! मेरी लाज आपके हाथों में है, साथ की विजय हो" । वह शीलवन्ती गुणवन्ती नारी णमोकार मन्त्र का स्मरण करती हुई दरवाजे के पास जा पहुँची । जब वह दरवाजे पर पहुँची, क्या देखती है "राजा अपने सैन्यबल के साथ खड़े उसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं । अनेकों नर-नारी खड़े हुए हैं सबकी दृष्टि मनोरमा पर जा टिकी । "जहाँ सज्जन होते हैं वहाँ दुर्जन भी अवश्य होते हैं ।" कुछ स्त्रियाँ शीलवन्ती की हँसी उड़ाने लगीं "देखो ! देखो ! ये बड़ी पतिव्रता बनकर आई है । सासु ने घर से निकाल दिया फिर भी सती बनकर दरवाजे खोलने आ गई लज्जा नहीं आती । हम बड़ी-बड़ी शीलवान् नारियों से दरवाजे नहीं खुले, देखते हैं ये क्या खोलेंगी । नारियों से ऐसी प्रताड़ना सुनते ही मनोरमा ने सबको आव्हान करते हुए कहा—

१. "हे त्रिलोकीनाथ ! मेरी अर्जी सुनिये, हे सकल पंचायत के लोगों, मेरे पतिदेव सम्पूर्ण गुणों के स्वामी सुखकारी हैं उनके सिवाय मैंने कभी पर-पुरुष की ओर दृष्टि नहीं दी । अन्य पुरुषों को मैंने सदा पिता-भ्राता की तरह देखा है यदि मेरा यह कथन सही है तो ये वज्रकपाट शीघ्र खुल जावें ।

२. हे त्रिलोकीनाथ ! मैंने अपने पतिदेव के अलावा अन्य किसी की ओर दृष्टि दी हो, स्वप्न में भी पर-पुरुष की इच्छा की हो तो वज्रकपाट न खुलें ।

इतनी प्रार्थना जिनदेव से करके उस शीलधुरन्धरा ने अपने पैर का अँगूठा कपाट / दरवाजे को लगाया, क्षण मात्र में वज्रकील गिर पड़ी, दरवाजे तत्काल ही खुल पड़े । चारों ओर आकाश में जय-जय की ध्वनि गूँज उठी । देवगण विमान में बैठे आकाश से ही सती मनोरमा की जयकार करते हुए—बहुत शुभ, बहुत शुभ, बहुत

अच्छा, बहुत अच्छा उच्चारण करते हुए प्रमोद करते हुए कहने लगे हे देवि ! तुम पतिव्रता नारी हो । तुम्हारे सतीत्व की चर्चा, प्रशंसा इन्द्र की सभा में हो रही है । हे देवी, तुम्हारे समान पातिव्रत्य धर्म को पालने वाली नारी और कोई पृथ्वी पर नहीं है । हे देवी, तुम्हारा जीवन धन्य है, तुम्हारा जन्म सार्थक है । तुमने मातृकुल व पतिकुल दोनों को उज्ज्वल कर दोनों कुलों में "कलश नहीं शील कलश" चढ़ाया है, तुम्हारा सुयश लोकान्त तक गाया जायेगा ।

शीलवन्ती मनोरमा ने शील के प्रभाव से ग्यारह दरवाजे खोल दिये । पश्चात् राजा से कहा—आपके नगर की जो नारियाँ अपने पीहर गई होगी या किसी कारण नगर से बाहर होंगी वे आकर अपने शील की महत्ता बताते हुए कहेंगी "क्या बड़ी बात है, मैं यहाँ होती तो मैं ही खोल देती, इसलिये एक दरवाजा बन्द रहने दीजिये । इतनी बात सुनकर राजा ने सती के चरणों में हाथ जोड़कर विनय से कहा—हे देवी ! जब सौधर्म इन्द्र ने तुम्हारे शील की प्रशंसा की है तो हम तो कह ही क्या सकते हैं । हे देवी ! तुमने मेरे नगर की पुत्रवधू बनकर मुझे धन्य किया है । धन्य हैं तुम्हारे माता-पिता, धन्य है तुम्हारा जीवन ।

सेठ महीपाल ने पुत्रवधू से कहा—बेटी ! मेरी सब भूलों को माफ करो, तुम्हें पाकर मैं आज निहाल हो उठा । मनोरमा ने ससुर के चरणों पर नतमस्तक हो शीश झुकाया । वह सम्यग्दृष्टि नारी थी उसके भी मिथ्यात्व का कलमष नहीं था उसने शीघ्र ही ससुर की आज्ञा को स्वीकार किया और आनन्द के साथ अपने पतिगृह की ओर चली । सास के चरणों में शीश झुकाया । सासु ने बहू को गले लगाया और आनन्दाश्रुओं से दोनों में मिलाप हुआ । सास ने कहा—बहू मनोरमा ! मुझ पापिनी को क्षमा करो, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया । मनोरमा ने हाथ जोड़कर सास से कहा- सासुजी ! आपका क्या दोष है, अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों का फल तो प्रत्येक जीव को भोगना ही पड़ता है । आपका निमित्त पाकर मेरे कर्म निर्जरित हुए हैं आप तो मेरे लिये महा उपकारी हैं' । आपका उपकार मैं कभी नहीं भूल सकती । सारे परिवार से सुखद मिलाप हुआ ।

इस प्रकार शील परीक्षा में उच्चतम सफलता को प्राप्तकर शीलवती मनोरमा ने अपने घर में पदार्पण किया। सेठ महीपाल ने मंगल बधाइयाँ कीं। श्री जिनालयों में वृहद् रूप से पंचामृताभिषेक, शान्तिधारा व अष्ट द्रव्यों से पूजा करवाई गई। याचकों को दान, सज्जनों को सम्मान दिया गया। सेठ महीपाल ने अपने आँगन में आनन्द भेरी व शहनाईयाँ बजवाईं, लाखों का द्रव्य खर्च किया। अब तो चारों ओर सुखद वातावरण बन गया। शीलवन्त, गुणवन्त, धर्मधुरन्धर, दृढ़प्रतिज्ञ कुमार सुखानन्द के साथ शीलवन्ती, रूपवंती, कुलवन्ती, धर्मधुरन्धरा, दृढ़चरित्र आराधिका मनोरमा सती आमोद-प्रमोद के साथ सुखद जीवन व्यतीत करने लगी।

सत्य है शील व्रत सब व्रतों का सार है, शील के प्रभाव से ही इन्द्र अहमिन्द्र के अनुपम पदों की प्राप्ति होती है। शील की रक्षा ही आत्मा रक्षा है। इसलिये हे महानुभावों ! अपने-अपने जीवन में यथायोग्य अर्थात् पूर्ण शीलव्रत या एकदेश शीलव्रत अवश्य धारण करें। जिस घर में शीलवन्ती नारियाँ निवास करती हैं वे घर सदा पवित्र होते हैं—

शुचि भूमिगत पानी जानो, शुचि है नारी पतिव्रता।
शुचि कहा है न्यायी राजा, ब्रह्मचारी है सदा शुचि।।

जिस घर में व्यभिचारिणी स्त्रियाँ निवास करती हैं उस घर में सदा सूतक माना जाता है। जिस जीवन में शील का लवलेश नहीं, उस घर में सदा दरिद्रता का वास रहता है अतः सुख-शान्ति के प्यासे मेरे धर्मप्रिय भाई बन्धुओ ! शील प्रतिज्ञा अवश्य करो। पर्वों के दिनों में ब्रह्मचर्य से रहो। ब्रह्मचर्य से अपनी आत्म-शक्ति का वर्धन कर कर्मों का मर्दन करो। जो भव्यात्मा इस सारभूत कथानक का पठन-पाठन, चिन्तन-मनन करेगा वह निश्चित ही समस्त दुःखों से मुक्त हो अविनाशी परम सुख को प्राप्त करेगा।

"पर्वत से गिरना है, गिरते जाइये,
नाग को पकड़ना है, पकड़ते जाइये,
अग्नि में जलना है जलते भी जाइये, पर
शील प्रतिज्ञा करिये मेरे बंधुओं, शील पर दाग कभी न लगाइये।"

●

प० पू० आर्यिका स्याद्वादमती माताजी द्वारा लिखित एवं सम्पादित

१. स्याद्वाद बाल शिक्षा भाग १
२. स्याद्वाद बाल शिक्षा भाग २
३. स्याद्वाद बाल शिक्षा भाग ३
४. स्याद्वाद बाल शिक्षा भाग ४
५. नैतिक संस्कार भाग १
६. नैतिक संस्कार भाग २
७. नैतिक संस्कार भाग ३
८. भक्तामर स्तोत्र प्रश्नोत्तरी
९. छहढाला प्रश्नोत्तरी
१०. द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तरी
११. रत्नकरण्डश्रावकाचार (सम्पादन, अनुवाद)
१२. लघु पञ्चस्तोत्र
१३. मोक्षशास्त्र प्रश्नोत्तरी
१४. अमोल रत्न
१५. अद्भुत शक्ति (नारी)
१६. कर्त्तव्य पथ की ओर
१७. मर्यादा की रक्षा
१८. दुखों का मूल
१९. मानव जीवन
२०. तत्त्वार्णव (सप्त तत्व)
२१. वैराग्य की ओर (नाटक)
२२. मान्य खेट के हीरे (नाटक)
२३. सत् पथ की ओर (नाटक)
२४. युगल आचार्य पूजा
२५. रयणसार (सम्पादन, अनुवाद)
२६. ध्यान सूत्राणि (सम्पादन, अनुवाद)
२७. भक्ति मुक्ति सोपान
२८. विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका (वि० भक्ति अर्थ)
२९. श्रीमद् भगवद् जिनसहस्रनाम पूजा विधान
३०. सुभौम चक्रवर्ती
३१. शील-कलश (उपन्यास)
३२. जिनदत्त चरित्र
३३. वात्सल्य रत्नाकर भाग १ (सम्पादन)
३४. वात्सल्य रत्नाकर भाग २ (सम्पादन)
३५. वात्सल्य रत्नाकर भाग ३ (सम्पादन)
३६. बालबोध स्तुति शिक्षा (अनुवाद)